एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

F6

दो वर्षीय सेवापूर्व डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन

शिक्षा में जेण्डर एवं समावेशी परिप्रेक्ष्य

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

DRAFT

पाठ्य पुस्तक विकास समूह
पत्र–F-6
(शिक्षा में जेण्डर एवं समावेशी परिप्रेक्ष्य)

दिशाबोध	श्री दीपक कुमार सिंह, भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना श्री सज्जन राजसेकर, भा.प्र.से., निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, पटना डॉ० एस.पी.सिन्हा, सलाहकार शिक्षा विभाग बिहार, पटना
समन्वयक	श्री राम विनय पासवान, प्राचार्य, सी.टी.ई, सारण छपरा
लेखक समूह	श्री अरविन्द कुमार सिंह, व्याख्याता, पीटीईसी, बाढ़, पटना
	श्री अरविन्द कुमार, पूर्व व्याख्याता, डायट, गया
	डॉ० सुजय कुमार, व्याख्याता, डायट, नवादा
	श्री मनोरंजन कुमार, व्याख्याता, डायट, डुमराँव बक्सर
	श्रीमती शशिकला निषाद, व्याख्याता समावेशी शिक्षा, डायट दिग्घी वैशाली
समीक्षक	डॉ० शालिनी प्रसाद, व्याख्याता, एस.सी.ई.आर.टी. पटना
	श्रीमती मयूराक्षी मृणाल, व्याख्याता, डायट, पूसा, समस्तीपुर
	श्रीमती रश्मि कुमारी, व्याख्याता, एस.सी.ई.आर.टी. पटना

पाठ–सूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	समावेशी शिक्षा की समझ	4-17
2	विशेष आवश्यकता वाले बच्चे (दिव्यांगजन) और समावेशी शिक्षा	18-28
3	जेण्डर विमर्श और शिक्षा	29-34
4	संदर्भ सूची	35

DRAFT

आमुख

21वीं सदी का सबसे प्रासंगिक और अपरिहार्य विषय–वस्तु जेंडर और समावेशन है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ती खाई के कारण समावेशन की मांग न सिर्फ न्यायोचित है बल्कि आवश्यक भी है ताकि समरस समाज का निर्माण हो सके। दूसरी ओर विभिन्न कारणों से एक ओर स्त्री–पुरुष के बीच की खाई तब भी बढ़ती दिखती है जब स्त्री सशक्तिकरण के तमाम प्रयास चल रहे हैं।

समावेशन की प्रक्रिया अपनी गति से चलती है परंतु जरूरी यह है कि समावेशन की सोच रखी जाए। बिना समावेशी सोच के ना तो प्रक्रिया आगे बढ़ सकती है ना ही फलाफल निकल सकेगा। सामाजिक न्याय और विकास के लिए हर क्षेत्र में समावेशन ने जोर पकड़ा है पढ़ाई भी उससे अछूता नहीं है। सच तो यह है कि शिक्षा के बिना हर क्षेत्र में समावेशन या तो अधूरा रहेगा या विकृत। विडंबना यह भी रही है कि पिछली सदी तक एकीकृत शिक्षा को ही समावेशी शिक्षा0 मानकर बढ़ा गया जो कि समावेशी को लेकर आधी–अधूरी जानकारी पर आधारित रही है। शुक्र है कि नई सदी में समावेशी शिक्षा की अवधारणा को सही अर्थों में आत्मसात किया गया है। यही कारण है कि इसको लेकर स्वीकार्यता भी बढ़ी है और प्रयास भी चौमुखी हुए हैं।

दूसरी ओर 'जेंडर' जैसे शब्द जो लगभग 50 वर्ष पूर्व ही प्रयोग में आए हैं जिसमें स्त्री और पुरुष के लिंग भेद को एक खास नज़रिए से बंधकर देखने के प्रचलन का विरोध है और इस नज़रिए के अंतर को ही समाप्त करना उद्देश्य है ताकि स्त्री–पुरुष के बीच का विरोधाभास समाप्त हो सके और लैंगिक समानता समाहित हो। D.El.Ed. के पाठ्यक्रम में शिक्षा में जेंडर और समावेशी परिप्रेक्ष्य को पहली बार समावेश किया जाना नई सोच का परिचायक है। प्रस्तुत पाठ्यवस्तु में शिक्षा के जेंडर और समावेशी परिवेश को वृहद ढंग से बहुआयामी रूप में प्रस्तुत किया गया है। उद्देश्य है कि प्रशिक्षु इसे विषय के रूप में सही ढंग से समझ सकें। विद्यालयों में कार्य करने के दौरान इन विषय–वस्तु पर उनका नज़रिया स्पष्ट हो सके और इन शब्दों को लेकर दुविधा में न रहे।

पाठ्यवस्तु के पहले अध्याय में शिक्षा जेंडर विषय प्रशिक्षुओं को यह अवधारणा देती है कि बिना किसी ठोस कारण के स्त्रियों को कमतर समझना एकाकी नज़रिया है जिसे छोड़ना बेहतर है। कक्षाओं में भी यह जेंडर परंपरा रूप से प्रचलित है जिसे छोड़ना एक सभ्य और शिक्षित समाज की जरूरत है।

द्वितीय अध्याय में समावेशी शिक्षा की धारणा को स्पष्ट करते हुए उसके दायरे में आने वाले सभी बच्चों की बात कही गई है। इसका दायरा काफी व्यापक है और इसके मार्ग में आने वाली बाधाओं पर भी दृष्टिपात की गई है। अभिभावकों का नज़रिया भी समावेशन में कितना बाधक और सहयोगी रहा है इसकी पड़ताल की गई है। प्रशिक्षु इन अवधारणाओं से परिचित होंगे और उनका दृष्टिकोण विकसित हो पाएगा। पाठ्यपुस्तक के अगले अध्याय में समावेशी शिक्षा के अपवर्जन और विकृति की चर्चा की गई है। इस पाठ में विद्यार्थी यह समझ सकेंगे की समाज के किन–किन चरणों पर समावेशी की प्रक्रिया सही अर्थों में आगे बढ़ानी चाहिए ताकि समावेशी शिक्षा का लक्ष्य हासिल किया जा सके। शिक्षक प्रशिक्षुओं में डिप्लोमा पाठ्यक्रम में इन विषयों को पहली बार शामिल किया गया है। यह नवोन्मेशी विचार हैं और इससे परिचित होकर ही भावी शिक्षकों की दृष्टिव्यापक हो सकेगी और एक बेहतर समाज के निर्माण में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगी। समावेशी और जेंडर की सही अवधारणा से लैस शिक्षक सामाजिक बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे, ऐसी आशा है।

निदेशक

राज्य पढ़ाई शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार

DRAFT

इकाई 1

समावेशी शिक्षा की समझ

- **भारतीय समाज में समावेशन और अपवर्जन के विभिन्न रूप (हाशिए का समाज, जेण्डर, विशेष आवश्यकतावाले बच्चे–दिव्यांगजन)**

परिचय

भारत विविधताओं से भरा हुआ देश है। यहां जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विविधता दिखाई देती है। चाहे खान–पान हो, रहन–सहन हो, पर्व–त्योहार, पोशाक, भाषा–बोली, रंग–रुप, रीति–रिवाज – इन सब में विविधता दिखाई पड़ती है। यहां तक कि जलवायु और मौसम भी विविध रुप लिये हुए हैं। ऐसे में यहां विविध प्रकार की संस्कृति दिखाई पड़ती है। इतनी विविधताओं के बावजूद पूरा देश एक सूत्र में बंधा नजर आता है।

सामाजिक जीवन की विविधताओं की गहराई से पड़ताल करें तो हम पायेंगे कि समृद्धि और गरीबी भी समाज में व्याप्त है। यही हाल शिक्षा को लेकर भी है। कहीं पूर्ण संसाधनों से युक्त प्रत्येक मानक पूरा करता हुआ विद्यालय है, कुशल प्रबंधन है, दक्ष शिक्षक हैं, अनुशासित और पोषित छात्र हैं तो दूसरी ओर न्यूनतम मानक को पूरा करने की कोशिश में संसाधन विहीन स्कूल भी है जहां बड़ी संख्या में कुपोषित छात्र पढ़ने आते हैं। सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार वर्तमान समय में करोड़ों बच्चे स्कूली पढ़ाई के अवसर से या तो वंचित हैं या विभिन्न कारणों से स्कूल से दूरी हो गई है। इन्हीं बच्चों के मुख्यधारा में समावेशन के लिये पहचान और बाधक तत्वों की पड़ताल इस अध्याय में की गई है।

दरअसल प्रारंभिक शिक्षा की मुख्यधारा से वंचित बच्चे खासकर विशेष आवश्यकतावाले बच्चे, अनुसूचित जाति और जन जाति, खानाबदोश, अपराधी बच्चे या अपराधी माता–पिता की संतान, भिक्षावृत्ति करनेवालों की संतान, वेश्यावृत्ति से जुड़ी महिलाओं के बच्चे, पिछड़े वर्ग तथा अत्यन्त पिछड़े वर्ग के बच्चे हैं जो विद्यालय के दायरे से बाहर हैं। असली चुनौती इन्हीं बच्चों के समावेशन को लेकर एक उपयुक्त वातावरण के निर्माण की है जिस पर गौर किये जाने की आवश्यकता है।

DRAFT

भारतीय समाज में समावेशन और अपवर्जन के विभिन्न रुप

परिचय

भारतीय समाज में समावेशन और अपवर्जन के विभिन्न रूप (हाशिए का समाज, जेण्डर, विशेष आवश्यकता वाले बच्चे–दिव्यांगजन)

समावेशन

शिक्षा में समावेशन से तात्पर्य है कि सभी बच्चों की पढ़ाई एक साथ एक ही विद्यालय में हो। कक्षा एक छोटा सा समाज होता है जहाँ सभी प्रकार के बच्चे होते हैं। जैसे–प्रतिभाशाली, भावात्मक रूप से बुद्धिमान,मानसिक व शारीरिक रूप से अक्षम आदि। यदि हम उन सभी के शिक्षण में एक ही प्रकार के दृष्टिकोण को अपनाएँ तो कक्षा का एक बड़ा भाग वंचित रह जाता है जो बाद में पिछड़ जाता है। हमारी पढ़ाई प्रणाली प्रत्येक बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए बराबर अवसर प्रदान करने के लिए कहती है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं से युक्त एक कक्षा में शिक्षण कार्य करना बहुत चुनौतीपूर्ण है। ऐसे में ''समावेशी शिक्षा'' की अवधारणा एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में उभरी है। ऐसी शिक्षा जो सभी की विविधताओं का समावेश करे तथा उन विविधताओं के अनुरूप पाठ्यचर्याव शिक्षण में परिवर्तन अथवा

संशोधन लाये। समावेशन के दर्शन को न केवल एक कक्षा विशेष के अध्यापक द्वारा बल्कि पूरे विद्यालय द्वारा अपनाया जाना चाहिए जिससे कि पूरा शिक्षण कार्यक्रम प्रत्येक बच्चे के लिए सार्थक और प्रासंगिक बन सके एवं सभी वर्गों के छात्रों को पढ़ाई का लाभ मिल सके।

NCF-2005 के अनुसार ''समावेशन की प्रक्रिया में बच्चों को न केवल लोकतंत्र की भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अंतः क्रिया करना भी महत्वपूर्ण है।''

<u>अपवर्जन</u>

शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट बालकों की विशिष्टताओं की पहचान न करके उन्हें सामान्य बालकों के समान शैक्षिक अवसरों को न प्रदान करना ही अपवर्जन कहलाता है। यानि किसी समूह को मुख्य धारा से दूर कर देना ही अपवर्जन है। यह अपवर्जन कई क्षेत्रों में हो सकता है जैसे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि।

पोलमैन के अनुसार– '' वंचन निम्न स्तरीय जीवन दशा या विलगाव की ओर संकेत करता है, जो कि कुछ व्यक्तियों को उनके समाज की सांस्कृतिक उपलब्ध्यिों में भाग लेने से रोक देता है।''

<u>अपवर्जन के मुख्य प्रकारः–</u>

1. **सामाजिक अपवर्जनः–** सामाजिक आधारों पर किसी व्यक्ति या समूह का बहिष्कार करना ही सामाजिक अपवर्जन कहलाता है। यह अपवर्जन हम जाति, लिंग भेद के आधार पर छुआ–छूत, उँच–नीच आदि के रूप में समाज में देख सकते हैं।

2. **शैक्षिक अपवर्जनः–** पढ़ाई के क्षेत्र में भी कई समूहों को अपवर्जन का सामना करना पड़ता है। जैसे महिलाओं, दलितों, आदिवासियों की शैक्षिक उन्नति अन्य सामान्य लोगों की तुलना में काफी कम है।

3. **जेण्डर अपवर्जनः–** जेण्डर अपवर्जन से तात्पर्य जेण्डर के आधार पर होने वाले भेदभाव और हीनता के व्यवहार से है। जन्म से पूर्व ही कन्या भ्रूण हत्या, कन्या शिशु हत्या, पर्दा–प्रथा, घरेलु हिंसा आदि जेण्डर अपवर्जन के उदाहरण है।

वर्तमान भारतीय समाज में निम्नांकित श्रेणी के बच्चों को समावेशन की सख्त आवश्यकता हैः–

- ✓ अनुसूचित जाति के बच्चे
- ✓ अनुसूचित जन जाति के बच्चे
- ✓ अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे
- ✓ पिछड़े वर्ग के बच्चे
- ✓ एसिड हमले से पीड़ित बच्चे
- ✓ गंभीर बीमारी से ग्रसित बच्चे
- ✓ अत्यन्त पिछड़े वर्ग के बच्चे
- ✓ वंचित वर्ग के बच्चे
- ✓ शारीरिक रुप से दिव्यांगजन – दृष्टिबाधित बच्चे, अस्थि विकलांग बच्चे, श्रवणबाधित बच्चे, मंदबुद्धि बच्चे
- ✓ प्रतिभाशाली और सृजनशील बच्चे
- ✓ बाल अपराधी

- ✓ जेण्डर विभेद
- ✓ अधिगम अशक्तता वाले बच्चे

इसके अतिरिक्त बालश्रम से जुड़े बच्चे, भिक्षावृत्ति करनेवालों की संतान, वेश्यावृत्ति से जुड़ी महिलाओं के बच्चे, यायावर और घुमन्तु जीवन बसर करने वाले बच्चे, कुपोषित बच्चे, कैदियों के बच्चे, झुग्गी झोपड़ी में रहनेवाले बच्चे को भी समावेशन की आवश्यकता है। इन बच्चों के विविध रुपों को देखते हुए वर्तमान समय में समावेशन की नीति को प्रत्येक विद्यालय और सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रुप से लागू किये जाने की जरुरत है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह विद्यालय में हो या बाहर, सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है। विद्यालयों को ऐसे केन्द्र बनाये जाने की आवश्यकता है जहां बच्चों को जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चों, खासकर शारीरिक व मानसिक रुप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिये पर जीनेवाले बच्चों और कठिन परिस्थितयों में जीनेवाले बच्चों को गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई प्राप्त हो।

आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमता के अनुरुप अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हो, अपने सहपाठियों के साथ मौके बांटने का अवसर मिले। विद्यालयों में अक्सर हम कुछ गिने–चुने बच्चों को ही बार–बार चुनते रहते हैं। इस छोटे समूह को तो ऐसे अवसरों से फायदा होता है, उनका आत्मविश्वास बढ़ता है और वे स्कूल में लोकप्रिय हो जाते हैं। लेकिन दूसरे बच्चे बार–बार उपेक्षित महसूस करते हैं और स्कूल में पहचाने जाने और स्वीकृति की इच्छा उनके मन में लगातार बनी रहती है ।

तारीफ करने के लिये हम श्रेष्ठता और योग्यता को आधार बना सकते हैं लेकिन अवसर तो सभी बच्चों को मिलने चाहिये । सभी बच्चों की विशिष्ट क्षमताओं को पहचाना जाना चाहिये और उनकी प्रशंसा होनी चाहिये । इसमें विशेष जरुरतों वाले बच्चे भी शामिल हैं जिन्हें दिये गये काम को पूरा करने में ज्यादा समय या मदद की जरुरत होती है। ज्यादा अच्छा होगा अगर शिक्षक ऐसी गतिविधियों की योजना बनाते समय कक्षा में बच्चों से चर्चा करें और यह सुनिश्चित कर लें कि प्रत्येक बच्चा अपना योगदान दे पाये।

इसीलिये योजना बनाते समय, शिक्षकों को सभी की भागीदारी पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है। यह उनके प्रभावी शिक्षक होने का सूचक बनेगा । प्रतियोगिता पर अत्यधिक बल और व्यक्तिगत सफलतायें कई स्कूलों की पहचान बनती जा रही हैं; विशेषकर उन निजी विद्यालयों की जो मध्यम वर्ग को आकर्षित करने के लिये खुलते हैं; उन्हें अलग–अलग हाउस में बांट दिया जाता है और इसके बाद स्कुल की हर गतिविधि हाउस के अंक पर आधारित होती है। उसमें भाग लेने के आधार पर साल के अंत में पुरस्कार दिये जाते हैं। इस तरह अपने हाउस के प्रति निष्ठावान बनकर विद्यार्थी उसके लिये अंक जुटाने में शामिल हो जाते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा में विशेष आवश्यकता वाले बालकों को ध्यान में रखते हुए बहुत सी बातें बताई गयी हैं। इसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि कक्षा में सभी बच्चों के लिये समावेशी माहौल तैयार किया जाय, विशेषकर तब जब उनके लिये हाशिये पर धकेले जाने का खतरा हो । उदाहरण के लिये, वे विद्यार्थी जिनमें कुछ असमर्थतायें हैं। विद्यार्थी या विद्यार्थी समूहों को अपंग/असमर्थ/निर्योग्य जैसे शब्दों से संबोधित करने से उनमें एक प्रकार की कुंठा और असहायता की भावना घर कर जाती है। इससे उन कठिनाइयों पर पर्दा पड़ जाता है जिसका सामना विद्यार्थियों को विविध सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण से आने के कारण या कक्षा में अनुपयुक्त शिक्षण–विधि अपनाने के कारण करना पड़ता है। इन बच्चों के अधिकार भी, अन्य बच्चों के समस्या के रुप में न देखकर शिक्षण के सहयोगी संसाधन के रुप में देखा जाना चाहिये। शिक्षा में समावेश समाज में समावेश का ही एक घटक है।

अपवर्जन तथा समावेशन की प्रक्रिया में बाधा पहुंचाने वाले कारक

- ✓ **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली**

हमारी शिक्षा प्रक्रिया समावेशन के बजाय अपवर्जन को बढ़ावा देती है। भेदभावपूर्ण एवं असमानता पर आधारित शिक्षा–प्रणाली बच्चों के समावेशन में किसी प्रकार की कोई मदद नहीं करती है।

- ✓ **दोषपूर्ण मूल्यांकन प्रणाली**

हमारी शिक्षा में परीक्षा प्रणाली को एक सशक्त औजार के रुप में प्रयोग किया जाता है। परीक्षा में असफलता के लिये बच्चों को ही पूरी तरह से जिम्मेदार ठहराया जाता है, जबकि सीखने–सिखाने के तौर तरीके, शिक्षण–अधिगम सामग्री, शिक्षण विधियों एवं विद्यालय के माहौल भी सामुहिक रुप में जिम्मेदार होने चाहिये।

परीक्षा के भय एवं असफलता से बड़ी संख्या में बच्चे शिक्षा तंत्र से बाहर हो जाते हैं।

- ✓ **अभिभावक/माता पिता में नैराश्य भाव**

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के अभिभावक या माता–पिता अपने बच्चे के भविष्य को लेकर सकारात्मक सोच नहीं रखते हैं। वे अपने बच्चे को निर्योग्य या अक्षम मानते हैं और उनमें नैराश्य भाव आ जाता है। इनपर किये जाने वाले निवेश को भी वे फिजूलखर्ची मानते हैं।

- ✓ **तात्कालिक लाभ की चाहत**

समावेशन की प्रक्रिया धीरे–धीरे होती है। ऐसे में अभिभावकों को तत्काल लाभ नहीं मिलता है जिससे अभिभावक उदासीन हो जाते हैं।

- ✓ **अवसरों की उपलब्धता से अनभिज्ञता**

प्रायः अभिभावक समावेशन के लिये किये जा रहे प्रयासों से अनभिज्ञ होते हैं। ऐसे में उनके बच्चे इस लाभ से वंचित रह जाते हैं।

- ✓ **समाज का नजरिया**

प्रायः लोग विकलांग या विपरीत पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों के प्रति सकारात्मक नजरिया नहीं रखते हैं। और इन्हें समाज के अंग के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहते हैं।

- ✓ **पर्याप्त संसाधनों की अनुपलब्धता**

सुदूर क्षेत्रों में वंचित वर्गों के लिये पर्याप्त संसाधन ससमय उपलब्ध नहीं होते हैं। अनिश्चित उपलब्धता से इच्छुक प्रतिभागी की रुचि कम हो जाती है। बार–बार निराश होकर लौटने से वह वापस अपने ही परिस्थिति में लौट जाने को विवश हो जाता है।

समेकन

शिक्षा की मुख्य धारा से बच्चों को जोड़ने के प्रयास किये जा रहे हैं। तंत्र विकसित किये गये हैं और सार्थक प्रयास भी हुए हैं। लेकिन तंत्र की कमजोरी, संसाधनों की कमी, अभिभावकों में जागरुकता का अभाव, नैराश्य भाव समावेशन के मार्ग में बाधक बने हुये हैं।

मूल्यांकन

1. समावेशन एवं अपवर्जन से आप क्या समझते हैं ?
2. समाज के किस वर्ग को समावेशन की अधिक आवश्यकता है?

DRAFT

3. समावेश्न में अभिभावकों और प्रशासनिक तंत्र की क्या भूमिका होनी चाहिए?
4. शिक्षक–प्रशिक्षण समावेशन की प्रक्रिया में सहायक है – कैसे?
5. समावेशन की प्रक्रिया में बाधा पहुँचाने वाले कारकों का वर्णन करें।

कक्षाओं में विविधता और असमानता की समझः पाठ्यचर्यात्मक और शिक्षणशास्त्रीय संदर्भ

परिचय

समाज में विभिन्न जाति, लिंग, भाशा, धर्म और आर्थिक स्तर के लोग हैं। विद्यालय समाज का एक लघु रूप है। विद्यालय में भी भिन्न जाति, लिंग, धर्म और आर्थिक स्तर के बच्चे होते हैं। इस असमानता के फलस्वरूप उनकी शैक्षिक आवश्यकताएँ भी अलग–अलग होती है। अतः शैक्षिक विधियाँ एवं पाठ्यचर्या भी असमानता के अनुरूप भिन्न होनी चाहिए जो सभी प्रकार के बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति करे और उनका कक्षा में समावेश हो सके। इस खंड में हम कक्षाओं में विविधता एवं असमानता को समझेंगे तथा इसके आवश्यकता अनुरूप पाठ्यचर्या एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के बारे में जानेंगे।

कक्षा–कक्ष की विविधता

विविधता समावेशी कक्षा–कक्षा की महत्वपूर्ण विशेषता है। लेकिन यदि 'विविधता' को उचित सम्मान देते हुए बाल–केन्द्रित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सम्पादित नहीं की जाती तो शैक्षिक समावेशन का कोई अर्थ नहीं है।

हम जानते हैं कि हर बच्चा अद्वितीय है। हर बच्चे को सीखने की गति, उसकी रूचि योग्यता आदि दूसरे बच्चों से अलग होती है। हर बच्चे का लिंग, उसकी राष्ट्रीयता, उसका धर्म आदि उसकी व्यक्तिगत पहचान है जो अन्य बच्चों से पूरी तरह मेल नहीं खाते ।

इसके अतिरिक्त एक ही कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे विभिन्न समाज और समुदायों से आते हैं जिनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, आर्थिक पृष्ठभूमि, शैक्षिक पृष्ठभूमि आदि प्रायः एक दूसरे से अलग होती है। एक ही कक्षा के बच्चों की बुद्धि लब्धि भी एक समान नहीं होती है। कई प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक चुनौतियों से जूझने वाले दिव्यांग बच्चे भी कक्षा के अभिन्न अंग होते हैं।

अतः प्रभावी शिक्षण के लिए यह जरूरी है कि शिक्षक सभी बच्चों की विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य की योजना बनाएँ, छात्रों की आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यचर्या तथा पाठ्यसामग्री में यथोचित परिवर्तन करें। शिक्षकों को अपने शिक्षण तथा मूल्यांकन पद्धति में सुधारात्मक परिवर्तन करने के साथ ऐसे क्षिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण करना चाहिए जो दिव्यांग बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को भी पूरा कर सके । कक्षा–कक्ष की बैठक व्यवस्था, फर्नीचर, खेलकूद तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का निर्धारण करते समय भी हर बच्चे का ध्यान रखना जरूरी है। कई बार कक्षा में अधिगम अक्षम बच्चे, ऑटिज्म से पीड़ित बच्चे, अत्याधिक चंचल बच्चे के लिए शिक्षक को अलग से अधिक समय देते हुए व्यक्तिगत प्रयास भी करने चाहिए। समावेशी कक्षा के निर्माण के लिए शिक्षक को प्रत्येक बच्चे की विशिष्टताओं को पहचानकर, उनकी विविधताओं और आवश्यकताओं का सम्मान करते हुए उसके अनुरूप ही शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का निष्पादन करना चाहिए।

समावेशी कक्षा में अधिगम प्रक्रिया

बाल–केन्द्रित शैक्षिक वातावरण समावेशित कक्षा की आधारभूत पहचान है। इसमें शिक्षक एक सुगमकर्ता की भूमिका निभाता है जिसके मार्गदर्शन में कक्षा के सभी बच्चे ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। इसके लिए जरूरी है कि कक्षा का वातावरण भयमुक्त, सौहार्दपूर्ण एवं

लोकतांत्रिक हो जहाँ बच्चे बेहिचक एक दूसरे के विचारों का सम्मान करते हुए, मित्रवत वातावरण में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भाग लें। इसके लिए सृजनात्मक सोच वाले शिक्षक होने चाहिए जो बच्चों की विविधताओं का ध्यान रखते हुए अधिगम प्रक्रिया में सुधार करें।
समावेशी कक्षा में पक्षपात रहित शैक्षिक व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें सभी बच्चों को समान अवसर मिले एवं उनको एक निश्चित अधिगम स्तर की प्राप्ति के लिए आवश्यकतानुसार अतिरिक्त संसाधन प्रदान किये जाएँ। इसमें शिक्षक की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण है।

समावेशी कक्षा के लिए शिक्षण–अधिगम सामग्री का निर्माण करते समय छात्रों के अधिगम गति का ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत शिक्षण योजना का निर्माण किया जाना चाहिए। जिसमें विद्यार्थी की व्यक्तिगत जानकारी के अतिरिक्त यह विवरण भी दर्ज किया जाता है कि कि विद्यार्थी किसी भी गतिविधि को स्वयं या सहायता से संपादित कर सकता है या नहीं। इसके बाद यदि छात्र आशा के अनुकूल अधिगम प्राप्ति में सफल नहीं हो पाता है तो शिक्षक का दायित्व है कि वह शिक्षण विधि या शिक्षण अधिगम सामग्री में बदलाव लाए जिससे अपेक्षित अगिधम स्तर की प्रप्ति हो सके।
समावेशी कक्षा में शिक्षकों को ऐसे सामूहिक अधिगम प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए जिसमें छात्र अपने सहपाठी या साथियों से भी सीख सकें (Peer Learning) शिक्षकों द्वारा चरणबद्ध तरीके से सामूहिक अधिगम योजना लागू की जानी चाहिए जिसमें ऐसा वातावरण तैयार किया जाए कि बच्चे एक दूसरे के अनुभवों का लाभ उठाते हुए ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में साझेदार बनें।
किसी भी कक्षा में बच्चे विभिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते हैं इसलिए एक समावेशी शिक्षक को संवेदनशील होना अनिवार्य है। उसे पूर्वाग्रहों को त्यागकर अपनी भाशा, आचरण तथा व्यवहार के प्रति हमेशा सजग रहना चाहिए। एक समावेशी कक्षा के निर्माण के लिए कोई भी शिक्षण तकनीक शिक्षक की संवेदनशीलता एवं सृजनशीलता का विकल्प नहीं हो सकता।
एक समावेशी कक्षा में भाशागत विविधता का भी सम्मान होना चाहिए। समावेशी कक्षा निर्माण के लिए शिक्षक को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान बच्चों के घरों में बोली जाने वाली भाशा का प्रयोग करना चाहिए जिससे बच्चों में सवयं के प्रति सम्मान तथा विश्वास जागृत होगा।
कक्षा में व्याप्त विविधता एवं असमानता को देखते हुए यह आवश्यक है कि एक समावेशी शिक्षक विविध प्रकार की शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग करके एक समावेशी कक्षा का निर्माण करे जिसमें लगभग सभी बच्चे अपेक्षित अधिगम स्तर को प्राप्त कर सकें। इसमें क्रिया प्रधान शिक्षण विधियां, करके सीखना (जैसे प्राजेक्ट, दत्त कार्य, भ्रमण आदि), शिक्षण प्रविधियाँ (जैसे दृष्टान्त देना, प्रश्न पूछना आदि) आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

पाठ्यचर्या संबंधी अनुकूलन

परम्परागत पाठ्यक्रम की सहायता से समावेशी शिक्षा प्रदान नहीं की जा सकती है क्योंकि वह विशिष्ट बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती। इसलिए पाठ्यक्रम मे सुधार आवश्यक है जो निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता हैः–

1. **लचीला पाठ्यक्रमः–** विद्यालयों में समावेशी शिक्षाप्रदान करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। एक ही कक्षा में विभिन्न योग्यता वोले विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है, इसलिए पाठ्यक्रम को लचीला होना चाहिए जो विद्यार्थियों की विभिन्न क्षमताओं और आवश्यकतओं को पूरा कर सके।

2. **सहकारी पाठ्यक्रमः–** पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि वह सहकारी गतिविधियों को अधिक बढ़ावा दे। यदि छात्र आपस में मिलकर किसी काम को करेंगे तो उसे आसानी से सीख सकेंगे। इसके अतिरिक्त उनमें सामाजिक वार्तालाप, सहयोग और टीम भावना भी विकसित होगी।
3. **पठन सामग्री प्रदान करना :–** पठन सामग्री विद्यार्थियों की रूचियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार उपलब्ध होनी चाहिए। उदाहरण के लिए दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के लिए पठन सामग्री ब्रेल लिपि में प्रदान किया जाना चाहिए।
4. **साधारण पाठ्यक्रमः–** मानसिक रूप से दिव्यांग बच्चों के लिए साधारण पाठ्यक्रम होना चाहिए ऐसे बच्चों को पाठ याद करने की अपेक्षा व्यावसायिक प्रशिक्षणक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हें आत्म निर्भर बनाने के लिए हस्त–कौशल सिखाया जाना चाहिए।
5. **खेलों में भाग लेनाः–** विद्यार्थियों की शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें खेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
6. **सहगामी क्रियाओं में भाग लेनाः–** बच्चों को सहगामी क्रियोओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हे यात्राओं व भ्रमणों पर भी ले जाया जाना चाहिए।
7. **शिक्षण सामग्रीः–** समावेशी शिक्षण में शिक्षण सामग्री की सहायता से पाठ को प्रभावी एवं रूचिकर बनाया जा सकता है।

समावेशी शिक्षाकी अवधारणा एवं आवश्यकता

परिचय

समावेशी शिक्षा का अर्थ है सभी बालकों को समान कक्षायी परिवेश में एक समान शिक्षा प्रदान करना। विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालक होते हैं जिनमें कई शारीरिक कमियाँ हो जैसे सुनाई नहीं देना, चलने में कठिनाई होना आदि या मानसिक दिव्यांगता हो तथा वे दूसरे बच्चों से कमजोर हो सकते हैं। समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विशिष्ट बच्चों की छुपी हुई योग्यता को शिक्षा के द्वारा बाहर निकालकर मुख्य धारा में जोड़ना है। यानि विशिष्ट बच्चों की सामान्य बच्चों के साथ एक ही कक्षा में शिक्षा की व्यवस्था करनी है। इसमें प्रतिभाशाली बच्चों के साथ–साथ कमजोर एवं पिछड़े बच्चों पर भी उचित ध्यान नहीं दिया जाता है ताकि देश की मुख्यधारा में आकर वे अपनी योग्यताओं को विकसित करें और देश की उन्नति में अपना योगदान कर सकें।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप सुविधाएं दी जाती हैं ताकि वें सरलता और सुगमता के साथ शिक्षाग्रहण कर सकें। धीरे–धीरे समाज की सोच में भी बदलाव होने लगे और अभिभावक भी विशेष बालकों की शिक्षाहेतु आगे आने लगे। आज हमारे देश में ऐसे अनेकों विद्यालया हैं जहाँ विशिष्ट बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ उनकी विशिष्टताओं के अनुरूप शिक्षा प्रदान की जा रही है और ये बच्चे अपनी क्षमता के अनुरूप देश की उन्नति में अपना योगदान कर रहे हैं।

समावेशी पढ़ाई की अवधारणा

समावेशी पढ़ाई के अंतर्गत विभिन्न वर्गों, समुदायों के बच्चों, दिव्यांग बच्चों तथा विभिन्न सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चों को एक ही छत के नीचे बिना किसी भेदभाव के शिक्षाप्रदान की जाती है, सभी को समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं।

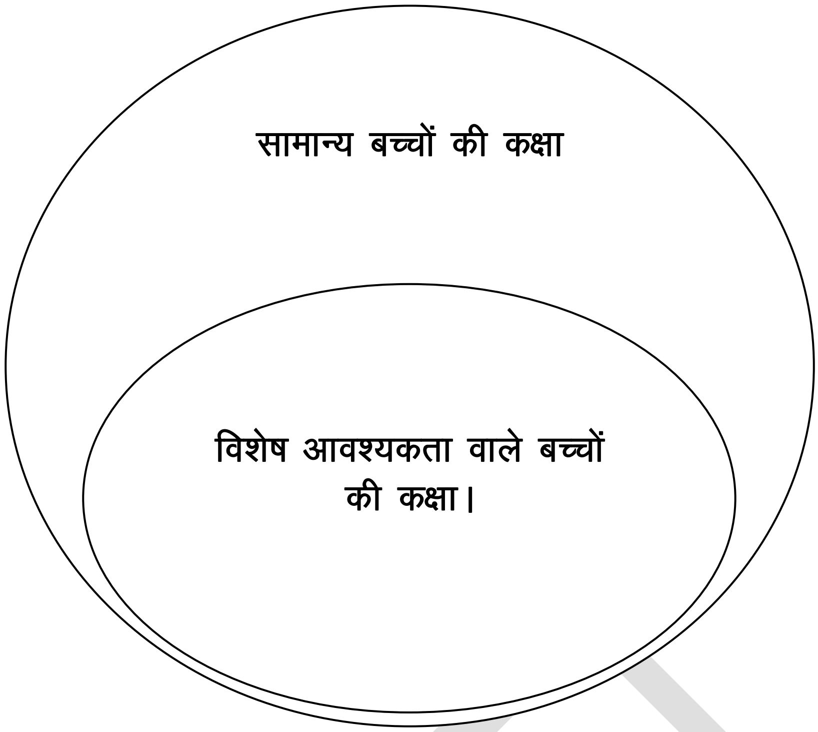

समावेशी शिक्षा

समावेशी शिक्षाके विकास में सलामान्का (स्पेन) में आयोजित विश्व कान्फ्रेंस (1994) का योगदान अतुलनीय है। इस सम्मेलन में समावेशी शिक्षा व्यवस्था के विकास की आवश्यकता पर विशेष बल देते हुए विद्यालय की शिक्षा प्रणाली एवं आधारभूत ढ़ांचे में ऐसे बदलाव का आह्वान किया जिसमें दिव्यांग बच्चों सहित समान बच्चे एक साथ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सहभागिता करें। इस सम्मेलन में ऐसी शिक्षा व्यवस्था के विकास पर बल दिया गया जिसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को ऐसी विशेष सुविधा तथा साधन उपलब्ध कराए जाएं जिससे उन्हें सामान्य बच्चों की बराबरी पर लाया जा सके। यह समावेशी शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत ही संभव है।

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत केवल दिव्यांग बच्चों का ही नहीं वरन उन बच्चों का समावेशन भी सम्मिलित है जो की हाशिए पर हैं जैसे अत्याधिक गरीबों में जीवन यापन करने वाले बच्चे, समाज में कमजोर वर्गों के बच्चे, प्राकृतिक आपदाओं (बाढ़, सूखा, भूकम्प आदि) से पीड़ित बच्चे तथा युद्ध की विभिषिका झेलने वाले ऐसे बच्चे जो अपनी जमीन से विस्थापित हो गये है। जिन बच्चों ने आर्थिक व पारिवारिक कारणों से बीच में ही पढ़ाई छोड़ दी है, उनका भी शैक्षिक समावेशन अनिवार्य है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 के अनुसार

समावेशन की नीति प्रत्येक विद्यालय तथा पूरी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किये जाने की जरूरत है। बच्चे के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे विद्यालय अथवा विद्यालय से बाहर, सभी बच्चों की सहभागिता की आवश्यकता है। प्रशासकों तथा अध्यापकों को यह समझना चाहिए कि जब भिन्न सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा भिन्न क्षमता स्तर के बच्चे एक साथ पढ़ते हैं तो कक्षा का वातावरण और समृद्ध तथा प्रेरक बन जाता है।

समावेशी शिक्षा की परिभाषाएँ

युनेस्को के अनुसार, ''समावेशी शिक्षा अधिगमकर्ताओं के गुणात्मक पढ़ाई के मौलिक अधिकार पर आधारित है जो आधारभूत शैक्षणिक आवश्यकतओं की पूर्ति कर जीवन को समृद्ध बनाती है। अतिसंवेदनशील एवं सीमांत समूहों को दृष्टिगत रखते हुए यह प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता का पूर्ण विकास करती है। समावेशी गुणात्मक पढ़ाई का परम ध्येय सभी प्रकार के विभेदीकरण को समाप्त करके सामाजिक संगठन का पोषण करना है।''

आर. के. शर्मा के अनुसार, ''समावेशी शिक्षा एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसका उपयोग करके प्रतिभाशाली और शारीरिक रूप से अक्षम छात्रों को एक साथ शिक्षा दी जाती है।''

समावेशी शिक्षा की आवश्यकताएँ

समावेशी शिक्षा वर्तमान समाज की एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गई है। देश की प्रगति के लिए प्रत्येक नागरिक को शिक्षित होना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब समाज के हर व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से शिक्षित किया जा सके। इसी के लिए समावेशी शिक्षा महत्वपूर्ण हो जाती है। समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैंः–

1. सभी बच्चों को एक साथ सीखने की अधिकार है।
2. बच्चों में उनकी सीखने की क्षमता और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण उत्पन्न हुए भेदभाव मिटाने के लिए।
3. बच्चों की सामाजिक और अकादमिक प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए।
4. विशेष बालकों को समाज और शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए।
5. बच्चों के बीच आपसी समझ, सम्मान और करूणा के भाव स्थापित करने हेतु।
6. विविधताओं के बीच व्यक्तिगत क्षमता के अनुरूप आत्मविश्वास पैदा करने के लिए।
7. कक्षा में सुरक्षित भावना के विकास के लिए।
8. भारत जैसे देश में निर्धनता चक्र समाप्त करने के लिए शिक्षा का प्रसार बहुत आवश्यक है तथा समावेशी शिक्षा इस दिशा में एक बेहतर प्रयास है।
9. समावेशी शिक्षा सब के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अवधारणा पर आधारित है जिससे प्रत्येक बच्चे का सर्वागीण विकास होता है और उनके शिक्षण स्तर में बढ़ोत्तरी होती है।
10. समावेशी शिक्षा बच्चों में अच्छी नागरिकता के लिए आवश्यक गुणों का विकास करती है जैसे– सहयोगी अधिगम, साथी–माध्यम से शिक्षा(पीयर लर्निंग), सहानुभूति, सहनशीलता, समूह में कार्य करना, एक दूसरे की आवश्यकता को समझना और सम्मान करना आदि।

समावेशी शिक्षाके लिए आकलन की प्रकृति एवं प्रक्रिया

परिचय

आकलन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम यह जान पाते हैं कि बच्चे का अधिगम स्तर क्या है यानि किस स्तर तक वह अधिगम को ग्रहण कर पाने में सफल रहा है। आकलन द्वारा बच्चों के अधिगम का मूल्यांकन किया जाता है एवं अधिगम में हुई कठिनाइयों का भी पता लगाया जा सकता हैं आकलन की प्रक्रिया शिक्षकों पर भी लागू होती है। यानि इस प्रक्रिया से हमें पता चलता है कि एक शिक्षक बच्चे को किस स्तर तक ज्ञान देने में सफल रहा और निर्धारित अधिगम स्तर तक पहुँच पाया या नहीं। शैक्षिक आकलन का मकसद विद्यार्थियों के ज्ञान, कौशलों, मान्यताओं और नजरियों का निर्धारण करने के लिए उनकी प्रगति पर नजर रखना और अधिगम प्रतिफलों को बेहतर बनाना है।

समावेशी शिक्षा में आकलन

आकलन समावेशी शिक्षा की प्रक्रिया का अभिन्न भाग है। विशेष आवश्यकतावाले बच्चों की पहचान करने तथा उनके अधिगगम स्तर ज्ञात करने हेतु आकलन की आवश्यकता होती है। समावेशी कक्षा में बच्चों द्वारा किये गये कार्यों और उपलब्धियों का आकलन बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। आकलन की प्रक्रिया में शिक्षक, शिक्षार्थी तथा शिक्षा के अन्य सभी पक्षों की पारस्परिक निर्भरता तथा उनकी उपयोगिता की जाँच होती है। इसके अंतर्गत छात्रों की उपलब्धि के आधार पर केवल विद्यार्थी की ही जाँच नही होती बल्कि शिक्षण पद्धति, पाठ्यपुस्तक तथा अन्य शैक्षणिक साधनों की उपयोगिता की भी जाँच होती है। इस आकलन प्रक्रिया में शिक्षण क्रिया को शिक्षार्थी की दृष्टि से और अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी बनाया जाता है।

आकलन की आवश्यकता

आकलन की आवश्यकता को हम अलग–अलग दृष्टिकोण से वर्गीकृत कर सकते हैः–

1. विद्यार्थीयों के लिए आकलन की आवश्यकता इस प्रकार हैः–
    - छात्रों के विशिष्ट आवश्यकताओं को जानने के लिए
    - विद्यार्थियों की योग्यता के अनुरूप पाठ्यक्रम चयनित करने हेतु ताकि सामान्य और समावेशी दोनों ही प्रकार की शिक्षा में मदद मिल सके।
    - छात्रों की रूचियों को जानने हेतु
    - छात्रों के अधिगम स्तर जानने हुतु
2. शिक्षकों के लिए भी बच्चों का आकलन आवश्यक है जिसके निम्न कारण हैः–
    - समावेशी कक्षाओं में उचित शिक्षण विधि का चयन करने हेतु।
    - छात्रों में निहित योग्यता एवं कौशल की पहचान करने हेतु।
    - शिक्षण सामग्री का विकास करने हेतु।
    - विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को जानने हेतु।
    - कक्षा में अनुशासन लागू करने हेतु।
3. पाठ्य–सहगामी क्रियाओं के लिए आकलन की आवश्यकता इस प्रकार हैः–
    - पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में किस प्रकार की सांस्कृतिक, रचनात्मक, सामाजिक आदि गतिविधियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, इसका ज्ञान हेतु।
    - पाठ्य–सहगामी क्रियाओं के स्वरूप में सभी प्रकार के बच्चों का समावेशन किया गया या नहीं, यह जानने हेतु।
    - पाठ्य–सहगामी क्रियाओ मे किस बच्चे को किस प्रकार की पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में रूचि है, यह जानने हेतु।
4. परिवार के लिए आकलन की आवश्यकता इस प्रकार हैः–
    - छात्रों की अधिगम क्षमता को जानने हेतु।
    - सामान्य एवं विशेष आवश्कता वाले बच्चों के अभिभावकों को आकलन द्वारा पता चलता है कि छात्र की प्रगति किस दिशा में हो रही है।
    - छात्रों की विद्यालयी गतिविधियों की जानकारी प्रदान करने हेतु आकलन आवश्यक है।

DRAFT

आकलन के प्रकार

शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर आकलन के निम्नलिखित प्रकार है:–

1. **संरचनात्मक आकलन (**Formative Assessment**)–** यह आकलन शिक्षकों द्वारा छात्रों को समझने तथा उनकी अकादमिक प्रगति के मूल्यांकन हेतु किया जाता हैं। छात्रों ने कितना सीखा एवं कितना सुधार करने की आवश्यकता है, यह पता लगाया जाता है। चूँकि यह आकलन पाठ के दौरान किया जाता है, इसलिए विद्यार्थियों की कठिनाइयों की पहचान की जा सकती हे। यह शिक्षण विधियों के चयन में भी सहायता करता हैं यह अधिगम के लिए आकलन है (Assessment for Learning) । इसके मुख्य उपकरण है– वाद विवाद, समूह एवं व्यक्गित कार्य, अवलोकन डायरी आदि।
2. **योगात्मक आकलन** (Summative Assessment)– विद्यार्थियों की उपलब्ध्यिों को ज्ञात करने हेतु योगात्मक आकलन एक निश्चित समयावधि के पश्चात किया जाता है। इसमें अंक और ग्रेड दियो जाते है। शिक्षक यह जान पाते हैं कि शिक्षण उद्देश्य कहाँ तक प्राप्त हुए हैं यह अधिगम का आकलन है (Assessment of Learning)। इसके मुख्य उपकरण है– वार्षिक परीक्षा, साक्षात्कार, प्रोजेक्ट, आदि।
3. **निदानात्मक आकलन (**Diagnostic Assessment**)–** इस प्रकार के आकलन द्वारा छात्रों की उपलब्धियों, उनके अधिगम के गिरते स्तर, उनके सीखने की कठिनाइयों को ज्ञात किया जाता है ताकि बाधाओं का उपचार किया जा सके।

समावेशी कक्षा में आकलन

समावेशी कक्षा में आकलन सीखने के निम्नलिखित क्षेत्रों मे किया जा सकता है:–

अकादमिक क्षेत्र

सीखने के अकादमिक क्षेत्र विषय आधारित ज्ञान पर केंद्रित होते हैं। इनमें गणित, सामाजिक विज्ञान, भाषा, विज्ञान जैसे विषय शामिल हैं। इसका उद्देश्य इन विषयों का संज्ञानात्मक ज्ञान देना होता है ताकि सीखने वाला विषय को समझकर, इसका विश्लेषण एवं मूल्यांकन करके अपने दैनिक जीवन में लागू कर सके।

सह शैक्षिक क्षेत्र

सह–पाठ्यचर्या क्षेत्र बच्चे के समग्र विकास से संबंधित है। यह बच्चों के रूचियों, मूल्यों, आदतों,

भावनाओं आदि पर आधारित होता है। छात्रों के पास शैक्षिक क्षेत्र से अर्जित ज्ञान और कौशलों को लागू करने की क्षमताएँ होनी चाहिए। सह–शैक्षिक क्षेत्रों के आकलन के घटकों में व्यक्तिगत, सामाजिक और भावनात्मक गुणों का आकलन सम्मिलत है जैसे:–

- परिश्रम और जिम्मेदारी
- नेतृत्व
- अनुशासन और समय की पाबंदी
- संप्रेषण कौशल
- नागरिक चेतना और समाज सेवा की भावना

आकलन की प्रविधियाँ

आकलन की प्रविधियों को दो भागों में बाँटा जा सकता हैः–

(क) अमानकीकृत प्रविधियाँ– ये प्रविधियाँ प्रायः शिक्षा के प्रारंभिक स्तर पर प्रयोग की जाती है।इन प्रविधियों द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का आकलन कैसे किया जा सकता है इसका वर्णन नीचे किया जा रहा हैः

1. अवलोकन प्रविधि– शिक्षकों द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का पूर्वाग्रह रहित अवलोकन निरंतर किया जाना चाहिए। इससे उन बच्चों की मानसिक और शारीरिक गतिविधियों द्वारा उनके विशेष लक्षणों का पता चलता है। यह अवलोकन कक्षा के अंदर या बाहर विद्यालय में किया जाना चाहिए। सभी निःशक्त बालकों का अलग–अलग अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए।
2. साक्षात्कार प्रविधि– इस प्रविधि में शिक्षक छात्रों से पूर्व निर्धारित प्रश्न पूछते हैं और उनके अन्तर्मन का अध्ययन करते हैं। साक्षात्कार सहानुभूतिपूर्ण और सहयोगात्मक रूप में होना चाहिए। इससे विशिष्ट बच्चों की रूचि, मानसिकता, दृष्टिकोण आदि को समझने में सहायता मिलती है।
3. प्रश्नावली प्रविधि– किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति कि लिए तैयार की गई प्रश्नों की क्रमिक श्रृंखला प्रश्नावली कहलाती है। इससे वस्तुनिष्ठ व संक्षिप्त उत्तर वाले उपयोगी प्रश्न रखे जाते हैं। यह विशिष्ट बच्चों का मनोसंवेगात्मक अध्ययन करने में सहयोग करता है।
4. परीक्षा प्रविधि– इसके अंतर्गत शिक्षकों द्वारा बच्चो की विभिन्न प्रकार की लिखित, मौखिक, तथा प्रायोगिक परीक्षाओं में प्राप्त अंको का लेखा रखा जाता है जिसे बच्चों की कक्षोन्नति के लिए उपयोग मे लाया जाता है। विशिष्ट बच्चों की उपलब्धियों जैसे विषयगत ज्ञान, कौशल आदि की जानकारी परीक्षा द्वारा सुलभ हो जाती है।
5. मापनी प्रविधि (रेटिंग स्केल)– यह शिक्षकों के लिए सीखने वाले बच्चों द्वारा प्रदर्शित व्यवहार कौशल आदि की मात्रा या आवृत्ति इंगित करना सुगम करते हैं। निर्धारण मापनी पाँच से नौ बिन्दुओं तक की हो सकती है तथा उत्तरदाता किसी एक बिन्दु पर सही का निशान लगाते हैं। उदाहरण कि लिए किसी श्रवण–बाधित बच्चे हेतु मापनी ''आप कितना सुन पाते हैंः–
   (i) बिल्कुल नहीं (ii) बहुत कम (iii) सामान्य (iv) पूर्णतः (v) कभी–कभी
6. अभिलेख प्रविधि– विद्यालयों में बच्चों की उपलब्धियों, योग्यताओं, प्रगतियों, परीक्षाओं में प्राप्त अंको, उनकी शारीरिक, आर्थिक , सामाजिक, बौद्धिक आदि सभी को संचित अभिलेख पत्र (जिसे प्रगति रिपोर्ट भी कहते है) में रखा जाता है। विशिष्ट बालकों की कमियों, मनोविकारों, शारीरिक विकारों से आदि की जानकारी भी अभिलेख के रूप बच्चों के पोर्टफोलियों में रखा जाता है ताकि इस जानकारी का उपयोग किया जा सके।

(ख) मानकीकृत प्रविधियाँ

मनकीकृत प्रविधियाँ वह है जिसके लिए विषयवस्तु का चयन एवं जाँच प्रयोगसिद्ध आधार पर की गई हो, जिसके मानक स्थापित किये जा चुके हों, जिसके फलांकन तथा विवेचन की प्रविधि विस्तार से उल्लिखित हो तथा जिसमें विभिन्न आयु वर्गों के लिए मानक पूर्व निर्धारित हो।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के आकनल हेतु उपयोगी मानकीकृत प्रविधियों का वर्णन इस प्रकार हैः

DRAFT

1. **बुद्धि परीक्षण प्रविधि–** इस प्रविधि द्वारा बच्चों की बुद्धि का पता लगाया जाता है। बुद्धिलब्धि बुद्धि का मापन है। इसे ज्ञात करने के लिए मानसिक आयु को वास्तविक आयु से भाग देकर 100 से गुणा किया जाता है। प्रतिभाशाली बच्चों की बुद्धिलब्धि लगभग 140 से ऊपर होती है, वहीं औसत बुद्धि वालों की बुद्धिलब्धि का मान लगभग 90–110 और लगभग 70–80 बुद्धिलब्धि अत्यन्त पिछड़े बच्चों का होता है
2. **उपलब्धि परीक्षण प्रविधि–** छात्रों के विषय संबंधी अर्जित ज्ञान का परिक्षण उपलब्धि परीक्षण द्वारा संभव है। बच्चों की उपलब्धियों को एक स्कोर द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि विषयों के विभिन्न कक्षा स्तर के उपलब्धि परीक्षण से उस कक्षा के बच्चों का विषयगत ज्ञान का स्तर ज्ञात होता है। विशेष बच्चों के भी विषयगत उपलब्धियों के अंक इस प्रविधि द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।
3. **रूचि मापन विधि–** कक्षा में अलग–अलग बच्चों की रूचि एक दूसरों से काफी भिन्न होती हैं, किसी की संगीत में तो किसी की कविता लिखने में या क्रिकेट खेलने आदि में हो सकती है। इस प्रविधि द्वारा विशिष्ट बच्चों की रूचि जानकर उसके अनुसार वैकल्पिक विषय या व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र चुनने में सहायता मिलती है।
4. **व्यक्तित्व मापन प्रविधि–** व्यक्ति के व्यवहार के समस्त गुणों को व्यक्तित्व कहते हैं। निःशक्त बच्चों की शारीरिक संरचना, सामाजिक समायोजन शक्ति, मानसिक स्वास्थ्य आदि का पता व्यक्तित्व मापन प्रविधि द्वारा किया जा सकता है। शुद्ध साहचर्य विधि, समाजमिति विधि साक्षात्कार विधि आदि आदि व्यक्तित्व मापन की विधियाँ है।
5. **अभियोग्यता मापन प्रविधि–** अभियोग्यता मापन प्रविधि– अभियोग्यता या अभिरूचि (Aptitude) द्वारा बच्चे की योग्यता का पता चलता है। अभियोग्यता कुछ विशिष्ट कार्य कर पाने की स्वाभाविक योग्यता है। कोई विशिष्ट बच्चा मशीनों का प्रयोग करने में सक्षम है या नहीं, किसी बच्चे के लिए कौन सा व्यवसाय करना अनुकूल होगा, यह सब अभियोग्यता मापन द्वारा संभव है।

सारांश

प्रत्येक बच्चे के उत्कृष्ट विकास के लिए उन्हे बराबर अवसर देना देश की प्रतिबद्धता है। इस दृष्टि को लागू करने के लिए समावेशी पढ़ाई एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में उभरा है। सभी नई शैक्षिक योजनाएँ पॉलिसियां ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थन में खड़ी है जिसमें सभी के लिए शिक्षा प्रमुख है यानि कोई बच्चा शिक्षा से वंचित ना रहे। आधुनिक सरकारें जीवन के हर क्षेत्र में समावेशी विकास की बातें करने लगी हैं। अब तो समावेशी बजट भी बनाए जाने लगे हैं। रोजगार, न्याय, शिक्षा आदि सभी में समावेशन की बात होने लगी है। शिक्षा में समावेशन का अर्थ है कि शिक्षा की मुख्यधारा से कटे हुए बच्चों के लिए विद्यालयों में उनके अनुकूल न सिर्फ भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध कराना बल्कि विद्यालय के संपूर्ण वातावरण में ऐसा बदलाव लाना कि वे बच्चे आसानी से समावेशित हो सकें। उनके समावेशन के लिए ही शिक्ष कों का प्रशिक्षण, रैम्प निर्माण, अशक्ता को चिन्हित करने हेतु कैम्प, सहायक उपकरण, सेतु पाठ्यक्रम आदि उपलब्ध कराये जा रहे है। अतः उन्नत और समृद्ध समाज के लिए समावेशी शिक्षा अपरिहार्य है।

मूल्यांकन

1. समावेशी शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट करें।
2. समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालें।
3. अपने पास के विद्यालय में जाकर विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का वर्गीकरण कर उनको दी जा रही सुविधाओं पर प्रकाश डालें

DRAFT

4. समावेशी शिक्षामें आकलन की आवश्यकता को स्पष्ट करें।
5. समावेशी कक्षा में आकलन की मुख्य विधियों का वर्णन करें।
6. सभी बच्चों की प्रतिभागिता सुनिश्चित करने हेतु एक समावेशी कक्षा में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया कैसी होनी चाहिए?
7. विशिष्ट बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप समावेशी शिक्षाके पाठ्यक्रम में किस प्रकार के सुधार की आवश्यकता है?

DRAFT

ईकाई–2

विशेष आवश्यकतावाले बच्चे (दिव्यांगजन) और समावेशी शिक्षा

- समावेशी शिक्षा मे विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का संदर्भ ऐतेहासिक विकास वर्तमान स्थिति चुनौतियां, बिहार का संदर्भ
- विशेष आवश्यकता वाले बच्चेः विविध प्रकार पहचान के तरीके एवं सीमाएँ
- समावेशी कक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के सीखने के लिए शिक्षा का स्वरूप

परिचय

विशिष्ट बालक का अर्थ

प्रत्येक बालक अपने आप मे विशिष्ट होता है, फिर भी जब विशेष आवश्यकता वाले बच्चों शब्द से मुखातिब होते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा बालक जो बालकों के सामान्य समूह से अलग कुछ विशिष्टता रखता हो। इन भिन्नताओं के आधर पर विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को कई समूहों व उपसमूहो में वर्गीकृत किया जा सकता हैं। जैसे– बुद्धि के आधार पर प्रतिभाशाली या मंदबुद्धि बालक शारीरिक क्षमता के आधार दिव्यांगता जैसे दृष्टिबाधिता, चलने फिरने में असमर्थता, श्रवणबाधिता वाणीदोश वाले बालक, सामाजिक दृष्टि से कुसमायोजित अथवा समस्यात्मक बालक, हाशिये के समाज के बालक आदि। चूँकि इन सभी उपवर्गों से संबंधित बालकों की प्रकृति भिन्न होती है। इसलिए इनके लिये विशिष्ट प्रकार की शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है।

क्रुक शैंक के अनुसार– ''विशिष्ट बालक वह है जो बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक अथवा संवेगात्मक दृष्टि से सामान्य समझे जाने वाली वृद्धि तथा विकास से इतना भिन्न है कि वह नियमित विद्यालय कार्यक्रम से पूर्ण लाभ नहीं उठा सकता है तथा विशिष्ट कक्षा अथवा पूरक शिक्षण व सेवा चाहता हैं।''

विशेष जरूरत बहुत सी परिभाषाओं वाला एक शब्द है जिसका विस्तार मन्द अधिगम से गंभीर संज्ञानात्मक दिव्यांगता, आवधिक बीमारी या विकासात्मक देरी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार

'' विकलांगता एक शब्द है, जिसमें हानि, गतिविधि की सीमाएँ और भागीदारी प्रतिबंध शामिल हे। एक हानि शरीर के कार्य या संरचना में एक समस्या हैः एक गतिविधि सीमा एक कार्य या क्रिया को निष्पादित करने में किसी व्यक्ति द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाई है जबकि भागीदारी प्रतिबंध है जीवन परिस्थितियों में शामिल होने में एक व्यक्ति द्वारा अनुभव की जाने वाली समस्या। इस प्रकार अक्षमता एक जटिल घटना है, जो किसी व्यक्ति के शरीर की विशेषताओं और उस समाज की विशेषताओं के बीच एक अन्तःक्रिया को दर्शाती है जिसमे वह रहता/रहती है।

https://www.who.int/topics/disabilities

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान करना एक शिक्षक के लिए काफी चुनौती भरा काम होता है। कुछ दिव्यांगता तो शिक्षक द्वारा आसानी से पकड़ में आ जाती है परंतु कुछ दिव्यांगता को पकड़ पाना सहज नहीं होंता है। अतः इन परिस्थितियों में एक शिक्षक के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह इन बालकों की विशिष्ट क्षमताओं को पहचान कर सके तथा उसके अनुसार आवश्यक कदम उठा सके।

समावेशी शिक्षा का ऐतेहासिक विकास (विश्व और भारत के संदर्भ में)

समावेशी शिक्षा की अवधारणा का श्रेय सेमूअल ग्रिडले होवे एक अमेंरिकी विद्वान को जाता है जिन्होंने अपने कार्यों में दृष्टि और श्रवण रूप से बाधित बालकों के शिक्षण में उत्सुकता दिखाई। होवे ने दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित तथा शारीरिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षा सामान्य बालकों के संपर्क मे रखकर देने की वकालत की क्योंकि इससे सामाजिक समायोजन के अवसर प्रस्तुत हो सकता है। 1975 में अमेरिका में शिक्षा की मुख्य धारा की अवधारणा प्रारंभ हुई।

विश्व में समावेशी शब्द का प्रचलन 1990 के दशक के मध्य से बढ़ा जब सलामांका (स्पेन) में शिक्षा में विशेष आवश्यकताओं पर विश्व सम्मेलन 1994 मे आयोजित हुआ, जिसमें 92 सरकारों और 25 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का प्रतिनिधित्व करने वाले 300 से अधिक प्रतिभागियों ने कारवाई के लिए एक रूपरेखा अपनाई थी जिसमें स्कूलों से सभी बच्चों का स्वागत करने का आह्यन किया गया था, भले ही उनकी शारीरिक स्थिति, बौद्धिक, सामाजिक, भावनात्मक या भाषायी स्थिति कुछ भी हो। सम्मेलन का समापन इस उद्घोषणा के साथ हुआ कि हर बच्चे को शिक्षा का बुनियादी अधिकार है और उसे सीखने का एक स्वीकार्य स्तर प्राप्त करने और बनाए रखने का अवसर दिया जाना चाहिये। डकार (सेनेगल) 2000 में आयोजित विश्व शिक्षा मंच (World Education Forum) पर भी शिक्षा में समावेशन की बात दोहराई गई। डकार सम्मेलन मे स्पष्ट किया गया कि किसी व्यक्ति या बच्चों को उच्च कोटि में प्राथमिक शिक्षापूर्ण करने के अवसर से केवल इसलिए वंचित नहीं किया जाना चाहिये कि वह सामर्थ्य से परे है। विशेष आवश्यकता वाले अभावग्रस्त उपजाति, अल्पसंख्यकों को दूर–दराज ओर अलग–अलग समुदायों तथा शिक्षा से वंचित नगरीय व दूसरें लोगों का समावेश वर्ष 2015 तक सर्वाभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति की रणनीतियों का अभिन्न अंग होना चाहिए। इन अन्तराष्ट्रीय सम्मेलनों ने एक सुखद धनात्मक स्थिति उत्पन्न कर दी है कि कोई भी देश समावेशी शिक्षा की अवधारणा के बिना उन्नति नहीं कर सकता है।

संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में कई ऐजेंसियों तथा अन्तराष्ट्रीय निकाय दिव्यांगजनों के लिए शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने एवं उनमे सुधार करने के लिये विभिन्न तरीकों से लाभ रहे हैं। इसमें विश्व बैंक, विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन, अन्तराष्ट्रीय मजदूर संगठन, संयुक्त राष्ट्र बाल कोष इत्यादि। ये सभी संगठन विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन (NGO) के साथ कार्यक्रमों को क्रियान्वन करते हैं ये समस्त निकाय समावेशन का एक व्यापक दृष्टिकोण लेते हैं अर्थात् दिव्यांग पुरूष एवं महिला, अल्पसंख्यक ग्रामीण समाज के सदस्यों के लिये असमानताओं को कम करने पर बल देते हैं।

भारत में समावेशी शिक्षा का विकास

भारत में समावेशी शिक्षा के इतिहास में सार्जेण्ट योजना 1944 बहुत महत्वपूर्ण है। दसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद भारत सरकार का ध्यान भारतीय शिक्षा की दशा सुधारने की ओर गया। इस रिपोर्ट में दिव्यांग व्यक्तियों के प्रशिक्षण की तरफ विशेष ध्यान दिया गया। इसके मुताबिक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को भी शैक्षिक अवसरों का लाभ मिलना चाहिए। इन बच्चों को विशेष प्रकार की संस्थाओं में शिक्षा प्रदान की जानी चाहिये। दृष्टिबाधिता , श्रवण बाधित तथा मानसिक रूप से विक्षिप्त बच्चों को विशेष शिक्षा दी जानी चाहिये।

1964 मे कोठारी आयोग ने शारीरिक तथा मानसिक रूप से दिव्यांग बच्चों की शिक्षा पिछड़े वर्गों की शिक्षा और जनजातीय लोगों की शिक्षा के लिये विशेष सुझाव दिये ताकि वे भी सम्मान के साथ आगे बढ़ सके।

https://www.distanceeducationiu.in

कोठारी कमीशन कहता है कि " शिक्षा के महत्वपूर्ण समाजिक उद्देश्यों में से एक अवसर की समानता करना और पिछड़े वर्गों के वंचित व्यक्तियों को उनकी स्थिति में सुधार के लिये शिक्षा का उपयोग करने में सक्षम बनाना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 इस बात की मुखालफत करता है कि शारीरिक रूप से अशक्त तथा MILD दिव्यांग बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। गंभीर रूप से दिव्यांग बच्चों के लिये विशेष विद्यालयों की स्थापना की जा सकती हैं। सभी विद्यालयों में दिव्यांग बच्चों की पहचान, निदान तथा आकलन की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

विकलांग जन अधिनियम 1995 (The Persons with Disabilities Act 1995) दिव्यांगों की देखभाल और जीवन की प्रमुख धारा में उन्हें पुनर्वासित किये जाने का अधिकार है। इसके अनुसार प्रत्येक बच्चे को 18 वर्ष की आयु तक उपयुक्त वातावरण में निःशुल्क शिक्षा का अधिकार है। सरकार को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिये विशेष स्कूल स्थापित करने चाहिए, सामान्य स्कूलों में दिव्यांग छात्रों के एकीकरण को बढ़ावा देना चाहिए और दिव्यांग बच्चों के व्यवसायिक प्रशिक्षण के लिये अवसर मुहैया कराने चाहिये। सभी सरकारी शैक्षिक संस्थान और सहायता प्राप्त संस्थान 3% सीटों को दिव्यांग जनों के लिये आरक्षित रखेंगे।

Open Acadomic Journal ppup.ac.in India

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के अनुसार समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकार प्रयास करेंगे कि उनके द्वारा सभी वित्तपोषित या मान्याताप्राप्त शिक्षण संस्थायें दिव्यांग बालकों के लिये सम्मिलित शिक्षा प्रदान करें तथा ऐसा वातावरण तैयार करें जो पूर्ण समावेशन को उच्चतम सीमा तक बढ़ाते हैं। इस अधिनियाम के अन्तर्गत दिव्यांग छात्रों की आवश्यकतओं को पूरा करने के लिये पाठ्यक्रम और परीक्षा प्रणाली में उपयुक्त उपांतरण करना जैसे परीक्षा पत्र को पूरा करने के लिये अधिक समय एक लिपिक या लेखक की सुविधा इत्यादि।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार समावेशन की नीति को हर स्कूल और सारी शिक्षाव्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किये जाने की जरूरत है। एक शिक्षक को कक्षा की योजना बनाते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि प्रत्येक बच्चा अपना योगदान दे पाये।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (CWSN) को किसी भी अन्य बच्चे के समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने के लिये सक्षम तंत्र बनाने के महत्व को पहचानता है। दिव्यांग बच्चों को प्रारंभिक स्तर से उच्चतम स्तर की शिक्षण प्रक्रियाओं में सम्मिलित के लिये सक्षम बनाया जायेगा।

वर्तमान स्थिति

भारत जैसे विशाल विविधता वाले देश में समावेशी शिक्षा विशेष आवश्यकता वाले बच्चे तथा सामान्य बच्चों को एक छत के नीचे लाने का नवीन उपागम है। unicef.org युनेस्को इन्सीटीट्यूट फॉर स्टेटिसटिस्क (UNESCO Institute of Statistics UIS) के अनुसार प्राइमरी स्कूल के 73 मिलयन बच्चे 2010 तक स्कूल से बाहर थे। भारत में 2.2% व्यक्ति दिव्यांग है। इन 2.2% व्यक्तियों में से 15 वर्ष और इससे ऊपर के वो दिव्यांग जिन्होंने माध्यमिक या इससे ऊपर की शिक्षा ग्रहण की है का प्रतिशत 19.3 है।

बिहार में कुल आबादी 10 करोड़ 40 लाख 99 हजार है जिसमें से 23,31,009 लोग दिव्यांग हैं। यह कुल आबादी का 2.24 है। अतः इससे यह पता चलता है कि भारत में दिव्यांगों की एक बहुत बड़ी

जनसंख्या निवास कर रही है जिसे सम्मानजनक जीवन यापन हेतु उचित शिक्षा तथा रोजगार की आवश्यकता है।

समावेशी शिक्षा के लिये सभी राज्यों की तरह बिहार में भी कई योजनायें चलाई जा रही है। इस कार्य हेतु बिहार में कई गैर सरकारी संगठन भी सरकार के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रहे हैं। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिये जो विद्यालय जाने मे असमर्थ हैं,राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् की ओर से NEP2020 के आलोक में मानक और दिशा निर्देश बनाया जा रहा है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के समावेशन के लिये सरकार विशेष रूप से प्रयत्नशील है। दिव्यांग व्यक्तियों को राज्य के विभिन्न बैंकों से ऋण की सुविधा मिलेगी। दिव्यांग छात्रों के लिए दिव्यांग छात्रवृत्ति योजना का प्रावधान किया गया है www.mospi.gov.in ताकि उन्हें पढ़ाई करने में सहूलियत है।

परिचय

हम प्रायः अपने आसपास कुछ ऐसे बच्चों को पाते हैं जो विभिन्न शारीरिक अक्षमता, मानसिक अक्षमता के कारण सामान्य बच्चों से अलग होते हैं, और वह पूरी तरह से समाज में घुल–मिल नहीं पाते हैं। इन्हें प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है इसलिए यह शिक्षा और समाज की मुख्यधारा से कट जाते हैं। गौर से देखने पर हम पाते हैं कि इन बच्चों में अलग–अलग क्षमता दिखाई पड़ती है। इस पाठ के अंतर्गत ऐसे ही विभिन्न अक्षमता वाले बच्चों के बारे में जानेंगे।

उद्देश्य

- ✓ ऐसे दिव्यांग बच्चों की कठिनाइयों, कारणों, उनकी समस्या के निदान के संदर्भ में एक दृष्टि पैदा करना।
- ✓ शिक्षकों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को शिक्षाकी मुख्यधारा में जोड़ने का कौशल विकसित करना।
- ✓ समावेशी शिक्षाकी परिकल्पना को साकार करने में मदद करना।

हमारे समाज में कई तरह के बच्चे हैं, कुछ खेलकूद में अच्छे हैं, तो कुछ पढ़ाई में अच्छे हैं, तो कुछ कार्य को नए तरीके से करने में निपुण होते हैं। कुछ में नेतश्त्व करने की क्षमता होती है। यदि इसके विपरीत कई ऐसे बच्चे होते हैं जो किसी कार्य को करने में शारीरिक रूप से असमर्थ होते हैं। कुछ बच्चे मानसिक रूप से असमर्थ होते हैं, और कुछ सीखने की दृष्टि से असमर्थ होते हैं और अक्षमता के कारणवश सामान्य बच्चों के मुकाबले देरी से सीखते हैं तो कहीं ऐसे बच्चे मौजूद हैं जो कि घर–परिवार विद्यालय, समाज में अपने–आप को समायोजित नहीं कर पाते हैं या कठिनाई महसूस करते हैं। ऐसे बच्चे जो कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांवेगिक एवं व्यवहारिक रूप से किसी सामान्य बच्चे से अलग होते हैं, उनकी आवश्यकता भिन्न होती है। उन्हें विशेष आवश्यकता वाले बच्चे या विशिष्ट बच्चों के रूप में पहचाना जाता है।

अब हम सामान्य बच्चों के बारे में यह कह सकते हैं कि सामान्यतः सामान्य बच्चे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, शैक्षिक, व्यवहारिक कार्य करने में किसी तरह की बाधा का अनुभव नहीं करते हैं। सामान्य बच्चों की बुद्धि लब्धि आई क्यू 85 से 110 के बीच होती है। दूसरी तरफ विशेष आवश्यकता वाले बच्चे शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक, व्यवहारिक रूप से दैनिक कार्यों को करने में सामान्य बच्चों की तुलना में असुविधा का अनुभव करते हैं या और अशक्त होते हैं और इसी और अशक्तता के फलस्वरुप उनको विशेष प्रकार का परिवेश उपलब्ध कराया जाता है जिससे उसकी अशक्तता से आंशिक या पूर्ण रूप से किसी व्यक्ति विशेष या समाज को प्रभावित नहीं करें। सरल भाषा में हम यह कह सकते हैं कि जो बच्चे मानसिक, शारीरिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक रूप से सामान्य बच्चों से भिन्न होते हैं और इन्हें

कक्षा में समायोजन के लिए विशेष शिक्षण–विधि एवं भौतिक सुविधाओं की जरूरत होती है, ऐसे बच्चे विशेष आवश्यकता वाले बच्चे कहलाते हैं।

इसी परिभाषा को आगे बढ़ाते हुए हम पाते हैं कि विशेष आवश्यकतावाले बच्चे अपनी विशेष व्यक्तिगत आवश्यकताओं के कारण अलग–अलग प्रकार के होते हैं जो निम्नवत है–

1. दृष्टि बाधिता
2. श्रवण एवं वाचन बाधिता
3. वाचन दुर्बलता
4. संज्ञानात्मक अशक्तता
5. गतिप्रेरक बाधिता
6. अधिगम अशक्तता
7. संवेदनात्मक एवं व्यवहारात्मक विकार

आइये हम एक–एक कर इन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के विषय में विस्तार से बात करेंगे।

1. दृष्टिबाधिता– खराब दृष्टि वाले बच्चों के लिए दृष्टिबाधिता बच्चे जो प्रकाश को देख सकते हैं किन्तु आकार को नहीं : बच्चे जिन्हें प्रकाश का बिल्कुल ज्ञान ही नहीं है दृष्टिबाधित बच्चे होते हैं। दृष्टिबाधित बच्चों को दो समूहों में बाँटा जा सकता है– जो कम दृष्टि वाले हैं तथा जो वैधानिक रूप से नेत्रहीन हें

   एक बच्चे को वैधानिक रूप से नेत्रहीन तब कहा जाता है जब उसकी दृष्टि क्षमता (दृष्टि की तीव्रता) 20/200 हो या सुधार के पश्चात भी बुरी हो या जब उसकी दृष्टि का क्षेत्र 20 डिग्री से कम हो तथा सुधार के बाद भी अच्छी आँख में 20 डिग्री से कम हो।

   कम दृष्टि मे शामिल समस्यायें हैं–

   जैसे दृष्टि का धुंधलापन, आँख पर परत, धुंध दृष्टि, नजदीक या दूर दृष्टिपन, दृष्टि की विकृति, रंगों की विकृति, प्रकाश के प्रति असामान्य संवेदनशीलता, रात्रि अंधता आदि।

   पहचान –

- बच्चे अक्सर सिरदर्द को शिकायत करते हैं।
- अक्सर आँखों को मलते हैं।
- इनकी आँखों का आकार भिन्न होता है।
- प्रकाश के प्रति संवेदनशील रहते हैं।
- इनकी आँखों मे टेढ़ापन या तिरछापन होता है अथवा आँखे भारी होती है।

2. श्रवण एवं वाचन बाधिता— श्रवण बाधिता का तात्पर्य किसी प्रकार का श्रवण विकार जबकि बधिरता का तात्पर्य है कान के माध्यम से भाषायी वाचन में भेदभाव करने की अत्यंत अक्षमता। श्रवण बाधित बच्चे वे हैं जो अपने सुनने को भाषा के लिये प्रयुक्त नहीं कर सकते हैं। न्यूनतम श्रवण बाधिता वाले लोग ऊँचा सुनने वाले कहलाते हैं। सामान्यतः एक व्यक्ति तब बधिर माना जाता है जब आवाज का स्तर 90 डेसीबल (सामान्य आवाज की अपेक्षा 5 से 10 गुणा अधिक) तक सुना जाता है एवं विस्तारित आवाज को नहीं समझा जा सकता है।

   श्रवण बाधित बच्चों की पहचानः—

   - व्यवहार में एकाग्रता की कमी।
   - एक जैसी ध्वनि के शब्दों से उन्हें प्रायः भ्रम हो जाता है।
   - कक्षा में ध्वनि के स्त्रोत को नहीं जान पाते हैं।
   - इनकी भाषा का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।
   - शाब्दिक निर्देशों को समझने में और अनुसरण करने में कठिनाई होती है।
   - अध्यापक के होठों की गतिविधि और उनके हाव भाव पर ध्यान देते हैं।

3. वाचन दुर्बलता (वाचन बाधिता)— वाचन बाधिता का विस्तार अभिव्यक्ति की समस्याओं या आवाज की शक्ति से पूर्ण आवाज विहीनता, हकलाहट से संबंधित होता है। वाचन परेशानियाँ सेरेब्रल पाल्सी, श्रवण बाधिता एवं मस्तिष्क चोट से संबंद्ध भी हो सकती है। वाचन परेशानियाँ वाले बच्चों को समझने एवं विचारों को व्यक्त करने में कठिनाइयां हो सकती है।

   पहचान

   - जो बोलते हैं वह स्पष्ट नहीं होता बोलने में संकोच करते हैं तथा धाराप्रवाह नहीं बोल पाते हैं।
   - इनकी आवाज में मधुरता का अभाव होता है। इनकी बोली में आयु अनुरूप अनुकूलता नहीं होती है।
   - कुछ बच्चे बोलने में तुतलाते हैं। धाराप्रवाह बोलने में उन्हें कठिनाई होती है रूक—रूक कर बोलते है परन्तु बलपूर्वक बोलते हैं।
   - कुछ बच्चे नाक के स्वर में बोलते हैं क्योंकि उनमें नासिक दोष होता है।

4. संज्ञानात्मक अशक्ततता— इस शब्द को तब प्रयोग में लाया जाता है जब एक व्यक्ति के मानसिक कार्यों को करने में या कौशलों जैसे बातचीत करने, स्वयं की देखभाल करने और सामाजिक कौशल की सीमा निश्चित होती है। ये सीमायें एक विशिष्ट बालक की अपेक्षा ऐसे बालकों में बहुत धीरे—धीरे सीखने और विकसित होने का कारण होती है। मानसिक मंदन वाले बच्चे बोलने, चलने और अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं का ध्यान रखने (जैसे— खाना, पहनना आदि) में अधिक समय लेते हैं। उन्हें विद्यालय में सीखने में कठिनाई का सामना करना पड़ता

DRAFT

है। वे सीखते है परन्तु अधिक समय लेकर। हो सकता है कि वे कुछ चीजों को सीख ही न सकें।

एक मानसिक बाधित बच्चा वह है जिसमें औसत से कम सामान्य बौद्धिक क्षमता है तथा जिसका बौद्धिक विकास धीमा है। मंदन की सीमा कम मंदन से गंभीर मंदन की हो सकती है।

संज्ञानात्मक अशक्तता की पहचानः–

- बच्चे का समान आयु समूह के बच्चों की तुलना में बौद्धिक स्तर का कम होना।
- बच्चे की शैक्षणिक उपलब्धियाँ लगातार न्यून होना।
- एकाग्रता का अभाव होना।
- स्मरण शक्ति की अवधि का कम होना।
- सूक्ष्म गामक कौशल जैसे कंघी करना, ब्रश करना, बटन लगाना, हाथों से भोजन करने में समस्या आदि।
- दिये गये दिशा निर्देश को समझने में कठिनाई महसूस होना।
- बच्चों में असामान्य व्यवहार– जैसे स्वयं को काटना, उग्र होना, स्वयं या दूसरों को चोट पहुँचाना इत्यादि।

मानसिक मन्दन को बुद्धि लब्धि (IQ) के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है, जो इस प्रकार है–

संज्ञानात्मक अशक्तता (मानसिक मन्दन) का वर्गीकरण	
गंभीरता का स्तर	IQ की सीमा
कम मानसिक मंदता	50–75
साधारण मानसिक मंदता	35–49
गंभीर मानसिक मंदता	20–34
गूढ़ मानसिक मंदता	20 से कम

05. गतिप्रेरक बाधिता– गतिप्रेरक बधिता वाले बच्चे विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की श्रेणी में से एक है एवं अनिर्वाय रूप से अन्य बच्चों के समान समाज का एक अभिन्न सदस्य है। ऐसे बच्चों एवं सामान्य बच्चों की मनोवैज्ञानिक स्वरूप में बहुत अंतर नहीं होता है । पहले वे समाज में सहानभूति की दृष्टि से देखे जाते थे परन्तु सामाजिक जागरूकता के कारण लोगों को मनोवृत्ति

में परिवर्तन आया हे। आज का समाज विभिन्न रूप से सक्षम लोगों के प्रति अब सामान्य नजरिया अपनाने लगा है।

एक गति प्रेरक बाधिता शरीर की एक ऐसी स्थिति है जो बच्चे को विद्यालय में सामान्य प्रगति करने से रोकता है जैसा कि औसत बच्चे करते हैं। विभिन्न योग्यताओं को नियंत्रित करने के लिए या उन पर पार पाने के लिये उन्हें विशेष ध्यान एवं उपकरण की आवश्यकता होती है।

जैसे– प्रमस्तिष्क पक्षाघात (Cerebral Palsy), मेरूरज्जु चोट (Spinal Injury) प्रमस्तिष्क चोट (Cerebral Injury), पार्किंसन बीमारी (Parkinsons Disease), मल्टीपल स्क्लेरोसिस (Multiple Scleroris), आदि।

पहचान–

- प्रमस्तिष्क पक्षाधात (CP) से ग्रस्त बच्चे का सिर–गर्दन अनियंत्रित रहता है तथा लार बहती रहती है।
- मेरूरज्जु चोट (Cerebral Injury) से ग्रस्त बच्चे को चलने–फिरने मे तथा मोटर (Motor) गतिविधियों को संचालित करने में समस्या आती है।
- प्रमस्तिष्क चोट (Cerebral Injury) इस समस्या से ग्रसित बच्चे में आंशिक या पूर्ण लकवा हो सकता है।
- पार्किसन बीमारी (Parkinsons Disease) में बच्चे के शरीर की गतिविधि को प्रभावित करता है जैसे चलना फिरना आदि। इससे मूवमेंट डिसऑर्डर (Movement Disorder) उत्पन्न होता है।

06.अधिगम अशक्तता (Learning Disability) यह स्थितियों के एक विपरीत समूह में से एक है जो श्रवण, दृश्य या स्थानीय सूचना या सूचनाओं के समुच्चय को महसूस करने में सार्थक परेशानियों का कारण बनता है। उनमें एक या एक से अधिक अधिगम पक्रियाओं को समझने, बोलने या लिखने में अधिगम संबंधी कठिनाइयाँ होती है।

अधिगम अशक्कतता के प्रकार–

- डिस्लैक्सिया (Dyeslexia)– ये बच्चे लिखित विषयवस्तु को समझने में असमर्थ होते हैं जो उन्हें अस्पश्ट व धुंधली दिखाई देती है।
- डिस्ग्राफिया (Disgraphia)– इन बच्चों को तंत्रिका तंत्र की असमर्थता के कारण अपने विचारों को लेखनीबद्ध करने में कठिनाई होती है।
- डिसकैल्कुलिया (Discalculia)– इन बच्चों में गणित संबंधी प्रश्नों को हल करने की असमर्थता होती है।
- ध्यान अभाव अतिक्रियाशीलता विकृति ADHD- Attention Deficit Hyperactivity Disorder- यह स्नायुतंत्र संबंधी विकृति होती है जिससे ध्यान बँट जाता है। इसमें अतिक्रियाशीलता होती है।

अधिगम अशक्तता की पहचान

DRAFT

- ये बच्चे अपने कार्य को संगठित करने में कठिनाई महसूस करते हैं।
- प्रश्नों के उत्तर दने में उन्हें अधिक समय लगता है।
- कक्षा या घर में दिये जाने वाले अनुदेशों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया सामान्य नहीं होती है।
- थोड़े से व्यवधान से उसका ध्यान भंग हो जाता है।

07. बहुबाधिता– यह पता लगाना सामान्य है कि एक अकेले प्रकार की बाधिता का जो कुछ भी कारण है, वह अन्यों का भी कारण है।

श्रवणबाधिता एवं दृष्टिबाधिता सामान्य रूप से चिन्हत समुच्चय है। इनमें से अधिकांश बच्चे न तो पूर्ण रूप से श्रवणबाधित होते हैं न ही पूर्ण रूप से दृष्टिबाधित। मधुमेह अन्धता उत्पन्न कर सकता है तथा प्रायः इसके कारण अंगुलियों में संवेदना भी समाप्त हो जाती है। प्रमस्तिश्क पक्षाघात (Cerebral Palsy) प्रायः दृश्टिबाधिता के द्वारा, श्रवण एवं भशायी विकारो के द्वारा या संज्ञानात्मक बाधिता के द्वारा साथ–साथ चलते है।

08. संवेदनात्मक एवं व्यवहारात्मक विकार– यह एक व्यापक श्रेणी है जो बच्चों एवं किशोरों में महसूस की गई अधिक विशिष्ट कठिनाइयों को समूहबद्ध करने में सामान्यतः शैक्षिक प्रणाली में प्रयुक्त होता है।

एक बच्चा लम्बे समाय के दौरान एक चिन्हित डिग्री के एक या अधिक निम्नलिखित लक्षणों को प्रदरार्ष्ट्रत करता है जो उसकी शिक्षाको बुरी तरह प्रभावित करता है।

पहचान–

- सीखने में परेशानी जो बौद्धिक, संवेदी या स्वास्थ्य कारकों द्वारा वर्णित नहीं किये जा सकते हैं।
- सहपाठियों एवं शिक्षकों के साथ संतोशजनक अन्तर्वैक्तिक संबंधों को बनाये रखने की परेशानी
- सामान्य परिस्थितियों में अनुपयुक्त प्रकार के व्यवहार की अनुभूति।
- दुःख या तनाव की एक सामान्य व्यापक मनोदशा।
- व्यक्तिगत या विद्यालय की समस्याओं से सम्बद्ध शारीरिक लक्षणों या भय विकसित करने की एक प्रवृत्ति।

विशेष आवश्यकतावाले बच्चों की सीमायें

1. विशेष आवश्यक्ता वाले बच्चों के समावेशन के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि उनकी विशिष्टताओं की समक्ष प्रधिकार द्वारा स्क्रीनिंग किया जाये तथा इसके आधार पर उन बच्चों को विशेष सहायक उपकरण उपलब्ध कराये जायें। इस हेतु सभी को प्रयासरत होना होगा।
2. विद्यालय का वातावरण– समावेशी शिक्षाके लिये यह आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण सुखद एवं स्वीकार्य होना चाहिये। बालक को विद्यालय में एक अपनेपन की अनुभूति होनी चाहिये तथा अपनत्व का भाव होना चाहिये।
3. सबके लिये विद्याालय की उपलब्धता– समावेशी शिक्षा की मूल भावना है कि एक ऐसा विद्यालय जहाँ सभी बालक एक साथ शिक्षाप्राप्त करते हैं परन्तु सामान्यतः इस तरह की बातें देखने और सुनने में आती है कि किसी बालक को उसको विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने में अपनी असमर्थता दर्शाते हुए विद्यालय में प्रवेश देने से मना कर दिया जाता है। समावेशी शिक्षाके उद्देश्यों को भी सभी बच्चों तक पहुँचाने के लिये यह आवश्यक है कि विद्यालय में

दाखिले की नीति में परिवर्तन किया जाना चाहिए। शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009, इस दिशा में एक प्रभावी कदम है परन्तु धरातल पर इसकी वास्तविकता पर अभी भी संदेह है।

4. मार्गदर्शन तथा निर्देशन की व्यवस्था– शिक्षाजीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। यह सत्य विशेष आवश्यकतावाले बच्चों पर भी लागू होती है। इस प्रक्रिया में नियमित शिक्षक, विशेष शिक्षक, अभिभावक तथा परिवार सामुदायिक अभिकरणों के साथ विद्यालयकर्मियों के बीच सहयोग की आवश्यकता है।
5. शिक्षकों का पर्याप्त प्रशिक्षण– एक शिक्षक ही गयात्यमक शक्ति तथा शैक्षिक संस्थानों की आधारशीला माना गया है। समावेशी शिक्षाके अन्तर्गत शिक्षक की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है क्योंकि समावेशित शिक्षाव्यवस्था में अध्यापक केवल अपने आप को शिक्षण तक ही सीमित नहीं रखता अपितु विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का कक्षा में उचित समायोजन तथा विशेष शैक्षिक सामग्री का निर्माण करना भी उसकी जिम्मेदारी है।
6. सहायक तकनीकी उपकरणों का उपयोग– समावेशी शिक्षा की सफलता विद्यालय के द्वारा तकनीक का समुचित उपयोग किये जाने की योग्यता पर निर्भर करता है। दूरदर्शन, कम्प्यूटर, रेडियो, इंटरनेट आदि तकनीकी सामग्री का उपयोग करके इन बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ उनके मनोरंजन आदि में भी प्रभावशाली भूमिका निभाई जा सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षाको समुचित एवं व्यवस्थित रू॰ से प्रदान करने हेतु इन सभी चुनौतियों तथा बाधाओं को दूर करने की आवश्यकता है। NEP 2020 के अनुसार विराष्ट्रश्ट दिव्यांगजनों वाले बच्चों को कैसे पढ़ाया जाये, इससे संबंधित जागरूकता और ज्ञान को सभी शिक्षक प्रशिक्षणक्षणों का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए।

समावेशी शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के सीखने के लिये शिक्षाका स्वरूप

शिक्षाहर बालक का अधिकार है। यह सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन है। समतामूलक और समावेशी शिक्षान सिर्फ स्वंय में एक आवश्यक लक्ष्य है, बल्कि समतामूलक और समावेशी समाज निर्माण के लिये भी अनिवार्य कदम है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को सपने संजोने, विकास करने और राष्ट्र हित में योगदान करने का अवसर उपलब्ध हों।

समावेशी कक्षा चूँकि सामान्य और विशेष आवश्यकता वाले बच्चों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, कमजोर समूहों के बच्चों का सममिश्रण होता है, इसलिये इस शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया काफी चुनौतीपूर्ण हो जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस बात की पुनः पुष्टि करती है कि स्कूल शिक्षामें पहुँच, सहभागिता और अधिगम परिणामों में सामाजिक श्रेणी के अंतरालों को दूर करना सभी शिक्षा से संबंधित विकास कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य होगा।

राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 के अनुसार दिव्यांग बच्चों को प्रारंभिक स्तर से उच्चतर स्तर की शिक्षण प्रक्रियाओं में सम्मिलित होने के लिये सक्षम बनाया जायेगा। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (RPWD ACT) 2016 समावेशी शिक्षा को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित करता है जहाँ सामान्य व दिव्यांग, सभी बच्चे एक साथ सीखते हैं तथा शिक्षण व सीखने की प्रणाली को इस प्रकार अनुकूलित किया जाता है कि वह प्रत्येक बच्चे को सभी सामान्य अथवा विशेष आवाश्यकतओं की पूर्ति में सक्षम हो।

दिव्यांग बच्चों के एकीकरण को ध्यान में रखते हुए विद्यालय व विद्यालय परिसरों की वित्तीय मदद की दृश्टि से सुस्पष्ट व कुशल प्रावधानों की व्यवस्था की जायेगी। इसके साथ यह भी

ध्यान दिया जाएगा कि विद्यालय व विद्यालय परिसरों में दिव्यांग बच्चों की आवश्यकता से संबंधित प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति की जाए।

आरपीडब्लूडी अधिनियाम के अनुरूप दिव्यांग बच्चों के लिये बाधा मुक्त पहुँच सुनिश्चित की जायेगी। विशेष आवश्यकतावाले बच्चों की विभिन्न श्रेणियों के अनुरूप विद्याालय इस प्रकार कार्य करेंगे जिससे प्रत्येक बच्चे की आवश्यकता के अनुरूप मदद सुनिश्चित करने हेतु उपयुक्त प्रणाली विकसित की जायेंगी ताकि कक्षा में उनकी पूर्ण सहभागिता व समावेशन सुनिश्चित किया जाए। कक्षा में शिक्षकों व अन्य सहपाठियों के साथ आसानी से जुड़ने के लिए विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को कुछ सहायक उपकरण, उपयुक्त शिक्षण सामग्री (जैसे–बड़े पिंट और ब्रेल प्रारूपों में सुलभ पाठ्यपुस्तकें) पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवाये जायेंगे। यह कला, खेल और व्यवसायिक शिक्षा सहित सभी स्कूलों गतिविधियों पर भी लागू होगा।

एनआईआएस (NIOS) भारतीय संकेत भाषा सिखाने के लिये और भारतीय संकेत भाषा का उपयोग करके अन्य बुनियादी विषयों को सिखाने के लिय उच्चतर गुणवत्ता वाले मॉड्यूल विकसित करेगा। साथ ही दिव्यांग बच्चों की सुरक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया जाएगा।

सीखने की दृष्टि से विशिष्ट अक्षमता वाले बच्चों को निरंतर मदद की आवश्यकता होती है। ऐसे मामलों में जितनी जल्दी मदद शुरू की जाती है, आगे प्रगति की सम्भावना उतनी ही बेहतर नजर आती है। शिक्षकों को सीखने से संबंधित इस प्रकार की अक्षमतओं की पहचान करने और उनके निवारण के लिए योजना बनाने में विशेष रूप से मदद मिलनी चाहिए। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम को प्रत्येक के लिये सक्षम और लचीला बनाना तथा साथ ही उपयुक्त आकलन और प्रमाणन के लिये अनुकूल इको सिस्टम का निर्माण करना आवश्यक होगा।

विशिष्ट दिव्यांगता वाले बच्चों (सीखने संबंधित अक्षमताओं के साथ) को कैसे पढ़ाया जाए, इससे संबंधित जागरूकता और ज्ञान को सभी शिक्षक प्रशिक्षण का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिये। साथ ही लैंगिक संवेदनशीलता तथा अल्प प्रतिनिधित्व वाले समूहों के प्रति संवेदनशीलता विकसित की जानी चाहिए जिससे उनकी प्रति भागिता की स्थिति को बेहतर किया जा सके।

उपरोक्त सभी नीतियाँ और उपाय एसईडीजी (SEDG) के लिये पूर्ण समावेश और समता प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण तो है किन्तु पर्याप्त नहीं। इसके लिये विद्यालय की संस्कृति में बदलाव की आवश्यक है। स्कूल शिक्षा प्रणाली में सभी प्रतिभागी जिनमें शिक्षक, प्रधानाचार्य, प्रशासक, कांउसलन और छात्र भी शामिल है सभी छात्रों की आवश्यकताओं, समावेशन और समता की धारणाओं और सभी व्यक्तियों के सम्मान प्रतिश्ठा और निजता के प्रति संवेदनशील होंगे। इस तरह की शैक्षिक संस्कृति छात्रों को सशक्त व्यक्ति बनने में मदद के लिये सबसे अच्छा साधन होगी, जो बदले में एक ऐसा समाज बनाने में सक्षम होंगे जो अपने सबसे कमजोर नागरिकों के लिये जिम्मेदार है।

अतः ये कहा जा सकता है कि एक स्वस्थ देश तथा समाज का निर्माण तभी हो सकता है जब सारे वर्गों को शिक्षा में सुचित प्रतिनिधित्व मिले। आइये हम सब मिलकर एक स्वस्थ्य समाज के निर्माण की ओर कदम बढ़ायें

ईकाई–3

जेण्डरः विमर्श और शिक्षा

भारत विविधताओं का देश है, जिसकी आबादी का लगभग आधा हिस्सा स्त्रियों का है। स्वतंत्रता के 75 वर्षों के पश्चात भी स्त्रियों एवं अन्य जेण्डर को बराबरी का दर्जा प्राप्त नहीं हो सका है। समाज द्वारा ही स्त्री एवं पुरुष में भेदभाव उत्पन्न किया जाता है। भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रू॰ में लैंगिक असमानता व्याप्त है।

जेण्डरः अवधारणा एवं संदर्भ

जेण्डर (Gender) जिसे हिन्दी में लिंग कहा जाता है, व्याकरण में यह कहकर परिभाषित किया गया है कि जिससे किसी के 'स्त्री' या 'पुरूष' होने का बोध हो, उसे लिंग कहते हैं। अंग्रेजी भाशा में लिंग के लिए दो अलग–अलग शब्द का प्रयोग किया जाता है– सेक्स एवं जेण्डर। इन दोनों शब्दों के प्रयोग में बहुत अन्तर होता है।

'सेक्स' जिसे प्राकृतिक लिंग भी कहा जाता है, स्त्री एवं पुरूष के बीच जैविकीय एवं शारीरिक अन्तर पर आधारित है, जो मुख्य रूप से क्रोमोसोम, जीन संरचना हार्मोन के स्तर और कार्य, एवं प्रजनन सहित शारीरिक विशेषताओं से जुड़ा हुआ है।

जेण्डर जिसे सामाजिक लिंग भी कहा जाता है सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से निर्मित भूमिकाओं, व्यवहारों एवं अभिव्याख्या की पहचान को संदर्भित करता है। जेण्डर इस बात की पुष्टि करता है, कि जैविकीय भेद से अलग जितने भी भेद दिखते हैं, वे प्राकृतिक नहीं है, बल्कि समाज द्वारा निर्मित है।

सेक्स एक जैविकीय अवधारणा है। अन्न ओकले ने अपनी पुस्तक **'सेक्स' जेंडर एंड सोसाइटी,** 1972 में सेक्स को परिभाषित करते हुए कहा है कि '' सेक्स का तात्पर्य पुरूष अथवा स्त्रियों के जैविक विभाजन से है।''

इस तरह हम देखते है कि सेक्स शब्द का प्रयोग महिलाओं एवं पुरूष में जैविक भिन्नता को दर्शाने के लिए होता है, वहीं जेंडर शब्द का प्रयोग महिला एवं पुरूष के सामाजिक एवं सांस्कृतिक भेद को दर्शाने के लिए होता है। जेंडर विभाजन का आधार सेक्स ही है। सेक्स के आधार पर कुछ कार्यो में विभाजन अवश्यंभावी है। जैसे की स्त्री अपनी यौन संरचना के कारण बच्चे को जन्म देती है एवं दूध पिलाती है। परन्तु अपने भिन्न जैविक संरचना के कारण पुरूष ये कार्य नहीं कर सकते है। पुरूष और महिलाओं के अन्तर जन्म से ही होते हैं, और किसी भी संस्कृति में समान रहते हैं।

कुछ जैविक अन्तरों को छोड़कर अन्य जितने भी अन्तर है, वे सभी समाज निर्मित है। समाजीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत जन्म से ही बालक एवं बालिकाओं को अलग–अलग तरीके से अनुशासित किया जाता है।

इसे हम कुछ उदाहरणों के द्वारा समझ सकते है, जैसे–

- लड़कों को बाजार से समान लोने के लिए भेजा जाता है।
- लड़कियों को बचपन से खाना बनाना सिखाया जाता है।
- लड़कों को खेलने के लिए बन्दूक, बल्ला, कार आदि दिया जाता है, वहीं लड़कियों को गुड़िया, पेन्टिंग सेट आदि दिए जाते हैं।
- लड़कों के लिए नीले रंग के कपड़े एवं वस्तुएँ दी जाती है, वहीं गुलाबी रंग लड़कियों के रंग माने जाते हैं।
- लड़कियों को घर की चाहरदिवारी में रहना अच्छा माना जाता है, अगर कोई कार्य भी करना है, तो शिक्षिका बने या बैंक मे जाए। लड़कों के लिए इंजीनियरिंग एवं पुलिस जैसे कार्य को करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है।

स्त्री–पुरूष के अलावा भी तीसरे लिंग की अवधारणा हमारे समाज में आरंभ से ही रही है जिसमें व्यक्ति का या तो स्वयं या समाज के द्वारा ना तो पुरूष और ना ही महिला के रूप में वर्गीकरण

किया जाता है। यह समाज में मौजूद एक सामाजिक श्रेणी है, जो परिवार एवं समाज के द्वारा उपेक्षित होते हैं। भारत में 15 अप्रैल 2014 को सुप्रीम कोर्ट ने एक तीसरे लिंग को मान्यता दी, जो न तो पुरूष है और ना ही महिला।

पितृसत्ता एवं नारीवादी विमर्श के संदर्भ में जेण्डर विभेद

पितृसत्ता

जब किभी भी हम महिला एवं पुरूष की समानता या उनके अधिकारों से संबंधित मुद्दों का अध्ययन करते है, तो कुछ ऐसे शब्दों को सुनते हैं, जिनका अर्थ जाने बिना स्त्री–पुरूष समानता या दोनों के अधिकारों को समझना संभव नहीं है।

भारतीय समाज में लिंग असमानता का मूल कारण इसकी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरूष की प्राथमिक सत्ता होती है, जहाँ उन्हें परिवार एवं समाज में उच्च माना जाता है। ऐसी व्यवस्था में स्त्रियों को पुरूष के अनुसार चलना पड़ता है। धर्म, समाज व परम्पराएँ पृितसत्ता को और बढ़ावा देते हैं।

पितृसत्ता अंगेजी शब्द पैट्रियार्की का हिंदी अनुवाद है। यह 'ग्रीक' के दो शब्दों से मिलकर बना है– पैटर+आर्के। जहाँ पैटर का अर्थ पितृ एवं आर्के का अर्थ शासन होता है। अर्थात पैट्रियार्की का अर्थ पिता का शासन है। इस व्यवस्था में पुरूष का महिलाओं पर वर्चस्व रहता है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि महिलायें पूरी तरह शक्तिहीन है, या पूरी तरह अपने अधिकारों एवं संसाधनों से वंचित है। इस विचारधारा की खासियत यह हैं कि इसमें माना जाता है कि पुरूष हर तरह से महिलाओं से श्रेष्ठ है, और उन्हें पुरूषों के अधीन रहना चाहिए।

नारीवाद

नारीवाद एक ऐसी विचारधारा है, जिसका विश्वास है कि पुरूष एवं स्त्रियाँ दोनों बराबर है, और स्त्रियों को पुरूष के समान अधिकार एवं अवसर मिलने चाहिए।

आरंभ से ही स्त्री–पुरूष को अलग–अलग देखा ही नहीं जाता है बल्कि अलग–अलग समझा जाता है। प्राचीन समय में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी किन्तु धीरे–धीरे वे मुख्यधारा से दरकिनार कर दी गई। बदलते समय के साथ–साथ स्त्रियों ने अपने हक के लिए आवाज उठाना प्रारंभ किया।

नारीवादी (फेमिनिस्ट) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1871 ई0 में फ्रांस में चिकित्सीय पुस्तकों में किया गया था। नारीवाद का पहला आंदोलन 19 वीं सदी के अन्त एवं 20 वीं सदी के प्रारंभ में किया गया, जो महिलाओं को मताधिकार दिलाने के लिए किया गया था। नारीवाद का दूसरा आंदोलन 1960–70 के बीच किया गया जहाँ इसका मख्य मुद्दा महिलाओं के लिए परिवार में एवं कार्यस्थल में बराबरी के साथ–साथ लैंगिक भेदभाव को दूर किया जाना था। नारीवाद का तीसरा आंदोलन 1990 के दशक में प्रारंभ हुई जो वर्तमान में भी जारी है। 20 वीं सदी में पश्चिम के नारीवादी आंदोलनों के बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण आंदोलन अमेरिका में हुए। इन आंदोलनों ने ही आधुनिक समय में संपूर्ण विश्व की महिलाओं को प्रभावित किया और इस आंदोलन से प्रेरित होकर विश्व में कई नारीवादी आंदोलन हुए।

भारत में नारीवादी आंदोलन का प्रारंभ सती प्रथा एवं बाल विवाह जैसी कुरीतियों को खत्म करने एवं महिला साक्षरता, महिला संपत्ति अधिकार एवं विधवा विवाह को लागू करने को लेकर हुए। भारत में नारीवाद का दूसरा चरण 1915–1947 तक माना जाता है, जहाँ गाँधी जी ने महिलाओं को उनकी घरेलू एवं पारिवारिक भूमिका से बाहर निकाल कर राष्ट्रवादी आंदोलन में शामिल किया। राष्ट्रवादी आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने उन्हे स्वतंत्र भारत में अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। बदलते समय में महिलाओं के आंदोलन के मुद्दे बदले जैसे– गर्भपात, यौन शोषण, घरेलू हिंसा, प्रजनन अधिकार, लैंगिक स्वतंत्रता दहेज प्रथा, समान वेतन, विवाह विच्छेद आदि। वर्तमान में समलैंगिकता और राजनैतिक आरक्षण के मुद्दे आंदोलन के ज्वलंत मुद्दे है।

बच्चों के समाजीकरण में जेण्डर की भूमिकाः बचपन, परिवार, समुदाय, मीडिया

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज व सामाजिक जीवन मानव जीवन का स्वभाव है, अतः मानव का समाज से पृथक कोई अस्तित्व नहीं है। समाज की सदस्यता व्यक्ति को जन्म से ही मिल जाती है। अतः जब व्यक्ति समाज के नियमों एवं आचार–व्यवहार को आत्मसात कर समाज सम्मत् व्यवहार करने लगता है, तब वह सामाजिक बनने लगता है और यह पक्रिया 'समाजीकरण' के नाम से जानी जाती है। समाजीकरण एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक जैविक प्राणी में सामाजिक गुणो का विकास होता है और वह सामाजिक प्राणी बनता है। समाजीकरण द्वारा संस्कृति सभ्यता, तथा अन्य अनगिनत विशेषताएँ पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है और जीवित रहती है।
किम्बल यंग के अनुसार '' समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है तथा समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है''। इसी प्रक्रिया के माध्यम से उसे समाज के मूल्यों एवं मानकों को स्वीकारने की प्रेरणा मिलती है। फिचर के शब्दों में ''समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों को स्वीकार करता है और उसके साथ अनुकूलन करता है।
रोजन एवं ग्लेजर के अनुसार, ''समाजीकरण समाज और संस्कृति के विश्वासों, मूल्यों, प्रतिमानों, तथा सामाजिक भूमिकाओं को सीखने की प्रक्रिया है।
समाजीकरण सीखने के साथ ही, ग्रहण की और अंतरिकीकरण की प्रक्रिया भी है इसके अन्तर्गत वे सभी प्रक्रियाएं आती है, जिसे कोई बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक अपने सामाजिक कौशल, भूमिका, प्रतिमान, मूल्य तथा व्यक्तिव्व के प्रतिरूप में ग्रहण करता है।

समाजीकरण की विशेषताएँ–

समाजीकरण की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

- समाजीकरण सीखने की प्रक्रिया है। इसके द्वारा व्यक्ति समाज में संस्कृति आदर्श, मूल्य और परम्परा के अनुरूप व्यवहार करना सीखता है।
- समाजीकरण एक निरन्तर चलनेवाली प्रक्रिया है, जो जन्म से मृत्यु तक चलती है।
- समाजीकरण की प्रक्रिया में अनुकरण का विशेष महत्व है। बच्चे अपने परिवार, पड़ोस, मित्रों एवं अन्य संगठनों से सामाजिक व्यवहार एवं गुणों को सीखते हैं।
- समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति अपने समाज के सांस्कृतिक मूल्यों, प्रतिमानों तथा स्वीकृत व्यवहारों को आत्मसात् करता है।
- सामाजिक उत्तरदायित्व और भूमिका का निर्धारण समाजीकरण के द्वारा होता है।
- समाजीकरण एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है।
- समाजीकरण व्यक्ति को संवेदनशील बनाने में मदद करता है।
- समाजीकरण के साथ सीखने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से जुड़ी है।

समाजीकरण के उद्देश्य

- समाजीकरण द्वारा व्यक्ति के जीवन को नियमबद्ध बनाया जाता है।
- समाजीकरण का उद्देश्य व्यक्ति में समाजिक क्षमता का विकास करना है।
- समाजीकरण द्वारा व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक भूमिका निभाने की योग्यता प्राप्त होती है।
- समाजीकरण का उद्देश्यएक जैविकीय प्राणी को समाजिक प्राणी बनाना है, जो सक्षम और उत्तरदायी व्यस्क बने।
- समाजीकरण द्वारा समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, मूल्यों, आदर्शों एवं मान्यताओं को अनवरत् सीखना एवं उसका अनुकरण करना है।
- समाजीकरण का उद्देश्य बालक को भावनात्मक रूप से संवेदनशील बनाना है। यह बालक के अन्दर 'हम की भावना'' का विकास करता है।

DRAFT

समाजीकरण के अभिकरण

- परिवार
- विद्यालय
- पास–पड़ोस
- मित्र
- जनसंपर्क के साधन
- सामाजिक समूह

समाजीकरण के अभिकर्ताओं पर विचार करते समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि अभिकर्ताओं का संबंध व्यक्ति की अवस्था से भी है। अपनी आयु के विभिन्न चरणों में व्यक्ति अलग–अलग समूहों, संस्थाओं, समितियों तथा व्यक्तिओं के संपर्क में आता है और उनसे बहुत कुछ सीखता है।

बच्चों के सामाजीकरण में जेण्डर की भूमिकाः बचपन,परिवार, समुदाय, मीडिया

बच्चों के समाजीकरण में जेण्डर की भूमिकाः बचपन

व्यक्तित्व के विकास, व्यवहारों के सीखने एवं संस्कृति के विभिन्न तत्वों को व्यक्तित्व के अंदर समाविष्ट कराने में अलग–अलग सस्थाओं तथा संगठनों की भूमिका होती है। शैशवावस्था में व्यक्ति को अंतःक्रिया करने और व्यवहारों को सीखने का सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण अत्यन्त सीमित होता है। सबसे पहले शिशु अपनी माता उसके पश्चात पिता, परिवार के अन्य सदस्यों, भाई–बहनों के संपर्क में आता है। प्रायः एक से तीन वर्ष की आयु तक उसका संसार परिवार तक ही सीमित रहता है। परिवार में ही शिशु भाषा, चलना, बोलना, खाना–पीना, स्नेह, भाई बहनों से संबंध परिवार के दूसरे सदस्यों से रिश्ते के स्वरूप आदि के विषय में जानता और सीखता है। इसे समाजीकरण का प्रथम चरण कहा जाता है।

समाजीकरण की प्रक्रिया में जेण्डर का संप्रत्यय अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बचपन से ही बच्चों के रहन–सहन, उसकी भाषा, रूचियों मूल्यों और नैतिकता आदि पर जेण्डर का प्रभाव रहता है। बालक और बालिकाओं के कपड़े पहनने के तरीके में अन्तर होता है, यहाँ तक की रंगों का चुनाव भी जेण्डर देख कर होता है। बच्चों के खिलौने भी जेण्डर देख कर ही चुने जाते हैं। जहाँ लड़कों को बन्दूक, बल्ला जैसे खिलौने दिये जाते हैं, वही लड़कियों को गुड़िया, पेंटिंग सेट दिये जाते हैं। बच्चों की भाषा पर भी जेण्डर का प्रभाव देखा जाता है। लड़के रूखा और कड़ा बोलते हैं, वही लड़कियां मधुर बोलती हैं। लड़के एवं लड़कियां के चलने –फिरने और रहने के ढ़ंग में भी बचपन से ही अन्तर देखने को मिलता है। बचपन से बच्चों के कार्य में भी अन्तर देखने को मिलता है। जहाँ लड़के बाहर का कार्य करते हैं वही बचपन से ही लड़कियों को माता के कार्य में हाथ बंटाने को कहा जाता है। लड़के एवं लड़कियों के नैतिकता के मूल्य पर भी जेण्डर का प्रभाव देखा जा सकता है। लड़कियों को आरंभ से ही नैतिक मूल्यों में बाँध कर रखा जाता है।

इस प्रकार बचपन से ही लड़के एवं लड़कियों के समाजीकरण पर जेण्डर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, जो समय के साथ और बढ़ता जाता है।

समाजीकरण में जेण्डर की भूमिकाः परिवार

समाजीकरण करने वाली संस्थाओं में परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। बालक परिवार में ही जन्म लेता है और परिवार में ही वह समाज के व्यवहार, नियम, प्रथाओं, संस्कृति आदि को सीखता है। समय और महत्व की दृष्टि से परिवार समाजीकरण करने वाली प्रथम संस्था है। सामूहिक जीवन पद्धति के ज्वलन्त प्रमाण के रूप में परिवार हरेक संस्कृति का अभिन्न अंग माना जाता है। सामाजिक जीवन के परम्परागम प्रतिमानों का रक्षक परिवार ही है। अनुशासन एवं सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण भी परिवार में ही होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार की भूमिका सबसे अहम मानी जाती है।

DRAFT

परिवार में बच्चों के समाजीकरण में जेण्डर की भूमिका स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। बच्चों के पालन–पोषण, उनके आचार–व्यवहार, दृष्टिकोण , पारिवारिक कार्य, उत्तरदायित्व आदि सभी पर जेण्डर का प्रभाव देखने को मिलता है।

परिवार में बच्चों के पालन–पोषण पर भी जेण्डर का प्रभाव देखने को मिलता है। लड़के एवं लड़कियों के भोजन, कपड़े, शिक्षा, आदि सभी में जेण्डर को लेकर अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ लड़कों को दूध–दही ज्यादा दिया जाता है, वहीं लड़कियों को कम या ना के बराबर दिया जाता है। लड़कों के पढ़ाई पर भी ज्यादा व्यय किया जाता है उन्हें पढ़ने के लिये बाहर भी भेजा जाता है, वही लड़कियों की पढ़ाई पर कम व्यय किया जाता है। लड़के एवं लड़कियों के व्यवहार में भी पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। लड़के उग्र स्वभाव के होते हैं, वहीं लड़कियाँ सौम्य होती है। लड़कों को बाहर के काम मिलते हैं, लड़कियों को घर के काम में हाथ बँटाना होता है। लड़कों को शुरू से अहसास कराया जाता है कि बड़े होकर तुम्हे इस घर की जिम्मेदारी संभालनी है, वही लड़कियों को पराया धन मान कर दूसरे घर को संभालने की सीख दी जाती है।

इस प्रकार लड़के एवं लड़कियों की मानसिकता में आरंभ से ही जेण्डर संबंधी अन्तर को बैठा दिया जाता है। उन्हें मानसिक रूप से इस तरह तैयार कर दिया जाता है कि वे जेण्डर संबंधी इस अन्तर को सहर्ष स्वीकार कर लें।

बच्चों के समाजीकरण में जेण्डर की भूमिकाः समुदाय

जब किसी समूह के सदस्य एक साथ रहते हैं और किसी विशिष्ट स्वार्थवश नहीं, अपितु सामान्य जीवन की मूलभूत दशाओं के भागीदार होते हैं, तो उस समूह को समुदाय कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी रूप में एक या अधिक से अधिक समूहों का सदस्य होता है। उदाहरण के लिए ये समूह परिवार, मित्रमण्डल, कार्य और मनोरंजन से जुड़े होते है। इनके बीच एक पारस्परिक संबंध होते है, जिसे सामुदायिक भावना का नाम दिया जाता है। समुदाय की अपनी विशेषताएँ हैं जैसे– निश्चित भू–क्षेत्र, जनसंख्या, निकट सामाजिक संबंध, हम की भावना, सांस्कृतिक समानता, संगठित अंतः क्रिया।

बच्चों के समाजीकरण में समुदाय की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसका प्रभाव जेण्डर पर भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। समुदाय की अपनी संस्कृति होती है, और जिस प्रकार की संस्कृति होगी जेण्डर पर उसका प्रभाव उसी तरह का होगा। कुछ संस्कृति में महिलाओं को काफी सम्मान मिलता है, तो कुछ संस्कृति में उन्हें दोयम दर्जा हासिल है। समुदाय के अपने नियम एवं परम्परायें हैं। कुछ समुदाय के नियम एवं परम्पराएं रूढ़ीवादी हैं। वहाँ के जेण्डर संबंधी भेदभाव ज्यादा होते है।

इस प्रकार यह देखा जाता हैं कि समुदाय का स्वरूप जैसा होगा उसका प्रभाव जेण्डर पर वैसा ही होगा। समुदाय भी बहुत हद तक महिलाओं एवं पुरूष को स्थिति को तय करता है।

बच्चों समाजीकरण में जेण्डर की भूमिकाः मीडिया

वर्तमान समय में मीडिया केवल सूचना का आदान–प्रदान ही नही कर रहा बल्कि यह समुदाय को सूचित, शिक्षित एवं प्रेरित करने का भी कार्य कर रहा है।

मीडिया शब्द को समाज में सामान्य जनसंचार के तरीकों या चैनल में से एक के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके माध्यम से समाचार, मनोरंजन, शिक्षा, डाटा या प्रचार संदेश फैल रहा है। मीडिया में समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन, फैक्स, इन्टरनेट आदि शामिल है।

मीडिया का वर्तमान स्वरूप अपने मूलरूप से काफी बदल गया है। वर्तमान में इन्टरनेट ने समाज में नवीन क्रांति ला दी है। मीडिया ने लोगों को करीब और एक साथ लाया है और कई नए ऑनलाइन समुदायों का निर्माण भी किया है। कोरोना महामारी के पश्चात् तो मीडिया हमारे जीवन का अहम हिस्सा बन चुका है। बचपन से बुढ़ापे तक हम मीडिया के विभिन्न माध्यमों से निरन्तर सीखते रहते हैं। समाज के नियमों, परम्पराओं मान्यताओं को भी आज ऑनलाइन के माध्यम से सीखा जा रहा है। बच्चों के समाजीकरण पर इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। मीडिया का प्रभाव जेण्डर के सन्दर्भ में भी परिलक्षित हो रहा है।

मीडिया ने ही समाज में प्रचलित कई कुप्रथाओं जैसे– बहु–विवाह, बाल–विवाह, छुआ–छुत, जाति प्रथा के प्रति समाज की धारणाओं एवं दृष्टिकोण को बदलने का काम भी किया है।

DRAFT

मीडिया निश्पक्ष रूप से जेण्डर के हरेक पक्ष (लड़का, लड़की अथवा अन्य जेण्डर) को समाज के समक्ष रखती है। मीडिया जेण्डर भेदभावों को कम करने का भी कार्य करती है। वह महिलाओं एवं पुरूष के कार्यों को समाज के समक्ष रख लोगों में जागरूकता लाने का कार्य करती है।

किन्तु मीडिया का जेण्डर पर नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलता है। मीडिया द्वारा पुरूष को साहसी एवं प्रभावशाली के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, वहीं महिलाओं को सुंदर, नाजुक एवं निष्क्रिय दिखाया जाता है।

मीडिया द्वारा दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों पर अगर ध्यान दिया जाए, तो यह जेण्डर संबंधित हरेक अन्तर को न्यूनतम कर सकता है, और बच्चों के समाजीकरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

DRAFT

संदर्भ सूचीः

- झा. मदन मोहन (2007). समावेशी शिक्षा. नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.
- Bhattacharjee, Nandini (1999). Through the looking-glass: Gender Socialisation in a Primary School in T. S. Saraswathi (ed.) Culture, Socialization and Human Development: Theory, Research and Applications in India. Sage: New Delhi.
- Alur, Mithu & Bach. Michael (2010). Journey for inclusive education in the Indian sub-continent. New York: Routledge.
- Geetha, V. (2007). Gender. Stree: Calcutta.
- Jha, M. M. (2008). School without Walls: Inclusive Education for all. New Delhi: pearson

DRAFT